आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च

रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की प्रमुख हिन्दी मासिकी

वर्ष : २४ जनवरी-फरवरी-२००५ अंक : २

रामकृष्ण निलयम, जयप्रकाश नगर, छपरा - ८४१ ३०१ (बिहार)

नम्र निवेदन

रामकृष्ण मिशन आश्रम, छपरा, बिहार–८४१३०१

दूरभाष : ०६१५२-२२०७३९

श्रीरामकृष्ण देव के सोलह संन्यासी शिष्यों में मात्र एक ही बंगभूमि के बाहर के थे ओर उन्हें अपनी माटी में जन्म देने का श्रेय छपरा को प्राप्त हुआ। स्वामी अद्‌भुतानन्द नाम से विख्यात ये संन्यासी लाटू महाराज के नाम से परिचित हैं। इनके माता-पिता समाज के अत्यंत पिछड़े वर्ग के थे। शैशवावस्था में ही माता-पिता के देहान्त हो जाने के कारण उन्हें बाल-श्रमिक के रूप में अपने चाचा के साथ कोलकाता जाना पड़ा।

दैवी कृपा से किशोर लाटू अभूतपूर्व आध्यात्मिक साधना के शिखर-पुरुष, सर्वधर्म समन्वय की प्रतिमूर्ति युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण के सम्पर्क में आए। इन दोनों का मिलन भारत ही नहीं, विश्व के आध्यात्मिक जगत् के लिए एक ऐतिहासिक स्वर्णिम संगम था। यह केवल एक परम गुरु से एक निष्ठावान शिष्य का मिलन नहीं, वरन् भारत की एक युग-परिवर्तनकारी घटना थी, मानो भावी भारत की जाति-भेद विहीन सामाजिक संरचना का अद्‌भुत संकेत था।

श्रीरामकृष्ण के निदेशन में गहन आध्यात्मिक साधना कर इस निपट ग्रामीण, निरक्षर युवक ने समाधि के उच्चतम सोपान पर ब्रह्मोपलब्धि कर आध्यात्मिक जगत में एक अद्वितीय, अद्‌भुत उदाहरण प्रस्तुत किया। लाटू महाराज की इस अनोखी उपलब्धि को देखकर स्वामी विवेकानन्द ने ही उनका नाम स्वामी अद्‌भुतानन्द रखा।

बिहार की मिट्टी धन्य है जिससे भगवान बुद्ध, महावीर जैन, सीता माई आदि के नाम जुड़े हैं। यह भूमि एक बार फिर से लाटू महाराज सरीखे सन्त को जन्म देकर धन्य हो गई है। आज स्वामी अद्‌भुतानन्द के जीवनचरित पर बंगला, हिन्दी, अंग्रेजी तथा अन्यान्य देशी-विदेशी भाषाओं में अनेक ग्रन्थों एवं लेखों का प्रकाशन हो रहा है। आध्यात्मिक जगत् में छपरा जिले को एक विशिष्ट गरिमा प्राप्त हुई है एवं वह दिन दूर नहीं जब छपरा एक प्रसिद्ध तीर्थस्थल में परिवर्तित हो जाएगा।

इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ ने रामनवमी २००३ को छपरा स्थित रामकृष्ण अद्‌भुतानन्द आश्रम का रामकृष्ण मिशन आश्रम के रूप में अधिग्रहण किया। आशा की जाती है कि रामकृष्ण मिशन आश्रम, छपरा अपने पूर्ण सामर्थ्य से लाटू महाराज की स्मृति अक्षुण्ण रखने के साथ-साथ समाज-कल्याण के कार्यक्रमों में स्वयं को समर्पित कर देगा।

हमारी तात्कालिक आवश्यकताएँ–

१. संत-निवास हेतु-------१० लाख रुपये
२. दरिद्रतम छात्रों के अध्यापनार्थ एक शेड हेतु ३ लाख रुपये
३. चिकित्सालय के लिए दवा एवं उपकरणों के हेतु-------१० लाख रुपये
४. अतिथि निवास के लिए--------३ लाख रुपये।

कार्यक्रमों को सुचारु रूप से चलाने के लिए हमें धन-बल एवं जन-बल की आवश्यकता है, जिसका अभी नितान्त अभाव है। आपसे विनम्र निवेदन है कि आप हमारे कार्यों में सहायता प्रदान करने हेतु सहानुभूतिपूर्वक आगे आएँ। इस आश्रम को दिये गये दान आयकर की धारा ८० (जी) के अन्तर्गत आयकर से मुक्त हैं। चेक या ड्राफ्ट 'रामकृष्ण मिशन आश्रम, छपरा, बिहार' के नाम से ऊपर दिए गए पते पर भेजें।

भवदीय
स्वामी मुनीश्वरानन्द
सचिव

॥ उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ॥

विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की प्रमुख

हिन्दी मासिकी

जनवरी-फरवरी-२००५

सम्पादक
डॉ० केदारनाथ लाभ
सहायक सम्पादक
ब्रज मोहन प्रसाद सिन्हा

वर्ष २४
अंक १-२

वार्षिक ६०/- एक प्रति ६/-

आजीवन ग्राहकता शुल्क
(20 वर्षों के लिए) ७००/-
संरक्षक-योजना
न्यूनतम दान-१०००/-

-: सम्पादकीय कार्यालय :-

विवेक-शिखा

रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर
छपरा : ८४१ ३०१ (बिहार)
दूरभाष : (०६१५२) २३२६३९

संस्थापक प्रकाशिका
स्व० श्रीमती गंगा देवी

इस अंक में

विवेक शिखा

के आजीवन सदस्य

२०४. श्री ए. डी. भट्टाचार्य-भद्रकाली (पं.बं.)
२०४. श्री ए. डी. भट्टाचार्य-भद्रकाली (पं.बं.)
२०५. अध्यक्ष-हिन्दी विभाग, राजेन्द्र कॉलेज, छपरा सारण (विहार)
२०६. श्री दीपक कुमार विद्यार्थी, काराधीक्षक जमशेदपुर (झारखण्ड)
२०७. सचिव, रामकृष्ण मिशन, पोरबन्दर (गुजरात)
२०८. सचिव, रामकृष्ण मिशन, राँची (विहार)
२०९. श्रीमती शुभा कामत-मुम्बई (महाराष्ट्र)
२१०. श्री वी. एल. अग्रवाल, नगाँव (आसाम)
२११. श्री कैलास खेतान, नगाँव (आसाम)
२१२. श्रीमती शोभा मनोत, कोलकाता
२१३. श्री संजय जितुरकर, औरंगावाद (महाराष्ट्र)
२१४. श्री कृष्ण कुमार नेवटिया, कोलकाता
२१५. श्री नन्द लाल टांटिया, उत्तर काशी
२१६. श्रीमती मंजु गुप्ता, वाराणसी
२१७. श्रीराम कुमार शुक्ला, वारावंकी
२१८. डॉ० दिनेशचन्द्र पाठक, चम्पावत
२१९. श्रीमती वसन्ती शर्मा, ऊधम सिंह नगर
२२०. श्रीमती विद्या मुरारी, पिथौरागढ़
२२१. श्रीमती गीता मर्थला, नैनीताल
२२२. रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर
२२३. श्री डी० डी० शर्मा, भोपाल

विवेक शिखा के संरक्षक

विवेक शिखा के प्रकाशन की सुविधा को ध्यान में रखकर 'विवेक शिखा' के 'स्थायी कोष' की योजना बनायी गयी है । जो कोई कम से कम १०००/- (एक हजार) रुपये या इससे अधिक रुपये 'विवेक शिखा' के 'स्थायी कोष' के लिए दान देंगे वे इसके संरक्षक होंगे । विवेक शिखा में उनका नाम प्रकाशित होगा और वे आजीवन विवेक शिखा निःशुल्क प्राप्त करते रहेंगे । विवेक शिखा के जो आजीवन सदस्य हैं वे शेष रकम देकर इसके संरक्षक हो सकते हैं । यह योजना केवल भारत के दाताओं के लिए लागू है ।

व्यवस्थापक

संरक्षक सूची

१. श्रीमती कमला घोष – इलाहाबाद –३,०००/-
२. श्री नन्दलाल टाँटिया – कोलकाता –१,०००/-
३. श्री हरवंश लाल पाहड़ा – अमृतसर –१,०००/-
४. श्रीमती निभा कौल – कोलकाता –१,०००/-
५. डॉ. सुजाता अग्रवाल – कर्नाटक –१,०००/-
६. श्रीमती सुभद्रा हाकसर – कोलकाता –५,०००/-
७. स्वामी प्रत्यगानन्द – चेन्नई –१,०००/-
८. श्रीमती रंजना प्रसाद – रायपुर –१,०००/-
९. श्री जी.पी.एस. धिमीरे – काठमांडू –१,०००/-
१०. डॉ० निवेदिता वक्शी – कुर्ला पं०मु० –१,०००/-
११. श्री उमापद चौधरी – देवघर –१,०००/-
१२. श्री शत्रुघ्न शर्मा – फतेहवाद –१,०००/-
१३. श्री प्रभुनाथ सिंह – माने, विहार –१,०००/-
१४. श्री रामकृष्ण वर्मा – कोटा राजस्थान –१,०००/-
१५. श्री कीर्त्यानन्द झा – पटना, विहार –१,०००/-
१६. श्री रामअवतार चौधरी – छपरा, विहार –१,०००/-
१७. डॉ. निधि श्रीवास्तव – जमशेदपुर –१,०००/-
१८. श्री सतीश कुमार वंशल – दिल्ली –१,०००/-
१९. श्री उदयवीर शर्मा – खंडवाया उ.प्र. –१,०००/-
२०. श्री आर. वी. देशमुख – पुणे –१,००१/-
२१. कुमारी उषा हेगड़े – पुणे –१,०००/-
२२. श्री राजकेश्वर राम – पटना, विहार –१,०००/-
२३. डॉ. (श्रीमती) नीलिमा सरकार – कोलकाता –१,०००/-
२४. श्री एन.के. वर्मा – मुम्बई –१,०००/-
२५. श्री अशोक राव – छिंदवारा –१,१००/-
२६. श्री मोती लाल खेतान – पटना –१,०००/-
२७. डॉ. प्रदीप कुमार वक्शी – कोलकाता –२,०००/-
२८. डॉ. शरत् मेनन – मुम्बई –१,०००/-
२९. श्री रामकृष्ण आश्रम – मैसूर –१,०००/-
३०. श्रीमती छविराज सिंह – गाजीपुर –१,०००/-
३१. श्री पंकज कुमार – अ० प्रदेश –१,०००/-
३२. श्री ए० डी० भट्टाचार्य – भद्रकाली –१,०००/-
३३. श्रीमती सरला वेन पाठक – वडोदरा –१,०००/-
३४. डॉ० सुचरिता सेन – राजकोट, गुजरात –१,०००/-

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो ।

विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की प्रमुख

हिन्दी मासिकी

वर्ष–२४ जनवरी-फरवरी–२००५ अंक–१-२

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा । निजानन्द में रखती अविचल विमल, 'विवेक शिखा' ।।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

नरेन्द्र नित्यसिद्ध है–नरेन्द्र ध्यानसिद्ध है–नरेन्द्र के भीतर सदा ज्ञानाग्नि प्रज्वलित रहकर सब प्रकार के भोजनदोष को भस्मी-भूत कर देती है। इस कारण यत्र तत्र जो कुछ भी वह क्यों न खाये, उसका मन कभी कलुषित या विक्षिप्त नहीं होगा।–ज्ञान रूप खड्ग से वह समस्त माया-बन्धनों को काट डालता है, इसीलिए महामाया उसे किसी प्रकार वश में नहीं ला सकती।

(२)

मैंने देखा, केशव जिस प्रकार एक शक्ति के विकास के द्वारा संसार में विख्यात हुआ है, नरेन्द्र के भीतर उस प्रकार की अठारह शक्तियाँ पूर्ण मात्रा में विद्यमान हैं। फिर देखा, केशव और विजय का हृदय दीपशिखा के समान ज्ञान के प्रकाश से उज्ज्वल बना हुआ है। बाद में नरेन्द्र के भीतर देखा–ज्ञानसूर्य ने उदित होकर माया-मोह रूप अज्ञान को वहाँ से अपसारित कर दिया है।

(३)

नरेन्द्र-सा एक भी लड़का मुझे अब तक नहीं दिखायी पड़ा ! जैसा गाने-बजाने में, वैसा पढ़ने-लिखने में, वैसा ही बातचीत में और फिर धर्म-विषय में भी ! वह रात भर ध्यान करता है, ध्यान करते-करते भोर हो जाता है, होश नहीं रहता। मेरे नरेन्द्र के भीतर थोड़ी भी कृत्रिमता नहीं है। बजाकर देखो तो ठन-ठन शब्द होता है----हँसते खेलते सब काम करता है; पास करना उसके लिए कोई बात ही नहीं। वह ब्राह्मसमाज में भी जाता है, वहाँ भजन गाता है, परन्तु दूसरे ब्राह्मों की तरह नहीं–वह यथार्थ ब्रह्मज्ञानी है। ध्यान करने के लिए बैठते ही उसे ज्योति–दर्शन होता है; उसे मैं यों ही प्यार नहीं करता।

(४)

बच्चे का स्वभाव ही है अपने को कीचड़-मिट्टी में सान लेना, पर माँ उसे गन्दा नहीं रहने देती, नहला-धुलाकर साफ कर देती है। इसी तरह मनुष्य का स्वभाव ही है पाप करना, परन्तु वह कितना भी पाप क्यों न करे भगवान् उसके उद्धार का उपाय कर ही देते हैं।

❑

जय बोलो विवेकानन्द की

–डॉ० केदारनाथ लाभ

जय बोलो विवेकानन्द की
वीरेश्वर शिव सुखकन्द की
जय बोलो विवेकानन्द की।

जय शुद्ध बुद्ध अकलुष अकाम
जय नित्य मुक्त विश्राम धाम
दृढ़ व्रती, यती, स्वच्छन्द की
जय बोलो विवेकानन्द की।

जय घनीभूत भारत स्वरूप
जय मूर्त्त वेद, वेदान्त–रूप
अनुपम अनूम निर्द्वन्द्व की
जय बोलो विवेकानन्द की।

जय विश्वजयी, जय कालजयी
जय अभयमंत्र दाता, विनयी
जय परमपुरुष मधु-छन्द की
जय बोलो विवेकानन्द की।

जय नित्य निरंजन सूर्य प्रखर
आकार-रहित नित भास्वर स्वर
ज्योतिर्धर अमलानन्द की
जय बोलो विवेकानन्द की।

जय नित्य-सिद्ध, जय सिद्ध-ध्यान
जय करतलगत विज्ञान-ज्ञान
नर रूप सच्चिदानन्द की
जय बोलो- विवेकानन्द की।

❑

दीवार से दिल में, भित्ति से भीतर

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

विवेक शिखा के समस्त लेखकों–पाठकों और ग्राहकों को नव वर्ष की अनेक-अनेक शुभ कामनाएँ ! भगवान् श्रीरामकृष्ण, श्री माँ सारदा देवी और स्वामी विवेकानन्द की कृपा और आशीर्वाद की आप सब पर निरन्तर वृष्टि होती रहे, आपका सर्वतोभावेन मंगल हो तथा आपको चैतन्य की प्राप्ति हो–यही उनसे मेरी आन्तरिक प्रार्थना है।

विवेक शिखा इस अंक के साथ ही अपने चौबीसवें वर्ष में प्रवेश कर रही है। अनेक आपदाओं, विपदाओं और अनियमितताओं के बावजूद यह स्वामीजी की कृपा से अब तक 'नॉट आउट' रही है। मैं उनके समक्ष प्रणत हूँ। आप सबका सहयोग हर हाल में इस शिखा को प्रज्वलित रखने के लिए मिलता रहा है। मैं आपको नमन् करता हूँ। भविष्य में भी आपका सहयोग मिलता रहेगा–यह विश्वास है।

आज हम एक विचित्र संक्रमण की स्थिति से गुजर रहे हैं। संचार माध्यमों–सिनेमा, टी०वी० और विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा हमारे समक्ष आज एक हॉट फुड की भाँति अपसंस्कृति परोसी जा रही है। हमारे अनेक युवजन उससे प्रभावित हो दिग्भ्रमित हो रहे हैं। सामाजिक-न्याय एक खोखला नारा बन गया है। भ्रष्टाचार में बड़े-बड़े नेतागण–केन्द्रीय मंत्री से मुख्यमंत्री तक–आकंठ लिप्त पाये जा रहे हैं। घपलों-घोटालों, खोखले नारों-हड़तालों, भ्रष्टाचारों-पापाचारों से देश की अंतरात्मा कराह उठी है। स्वार्थ सिर पर चढ़कर बोलता है। राष्ट्रीयता पीछे छूट गयी है। पूरे तंत्र में कोई धुन लग गया है। देश की स्वाधीनता के छप्पनवें वर्ष में हमने जो पाया उससे अधिक खोया है। सारा देश जैसे बीमार हो गया है। क्या उपाय है इस रोग से, इस सराँध से मुक्त होने का ? कहाँ है स्वामीजी की वाणी का जादू ?

मुझे एक घटना की याद आ रही है। कई वर्ष पूर्व मैं एक मंत्री (मिनिस्टर) के आवास पर उनसे मिलने गया था। उनका बाह्य व्यक्तित्व आकर्षक था। उनके व्याख्यान ओजस्वी होते थे। मैं उनसे प्रभावित था। उनके आवासीय बैठक खाने में जाते ही देखा–दीवार पर स्वामी विवेकानन्द की एक बड़ी-सी भव्य तस्वीर टँगी थी। एक राजनेता के कमरे में स्वामी जी की तस्वीर देखकर मैं सहज ही आह्लादित हो उठा। विस्मय भरे स्वरों में मैंने उक्त मंत्री जी से कहा–"वाह, स्वामीजी की आपने भव्य तस्वीर लगा रखी है।" मंत्री जी ने प्रसन्नता भरे शब्दों में स्वामीजी की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कहा था कि वे स्वामी जी से अपने छात्र जीवन से ही अत्यन्त प्रभावित रहे हैं। वे उनके परम भक्त हैं। उनके व्यक्तित्व निर्माण में स्वामी जी के आदर्शों का बड़ा योगदान है, आदि आदि। कुछ दिनों बाद मुझे उनकी चारित्रिक दुर्बलताओं के विषय में कई विश्वसनीय व्यक्तियों द्वारा अनेक प्रकार की विस्मय भरी बातें सुनने को मिलीं। विरोधी दल के एक राजनेता की हत्या में भी उनका हाथ होने की चर्चा हुई थी। मैं तो हैरान था यह सब सुनकर। क्या स्वामीजी की तस्वीर इतनी श्रद्धा से अपने कमरे की दीवार पर टाँगनेवाला व्यक्ति इतने निम्न चरित्र का हो सकता है !

कई दिनों तक मैं इस विषय पर सोचता रहा। फिर मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि कई लोग जैसे भगवान की तस्वीर दीवार पर लगाकर कदाचार में लिप्त रहते हैं। इन्होंने स्वामीजी की ही तस्वीर लगा रखी है।

सचमुच, स्वामीजी मात्र दीवार पर टाँगने की, कमरे के अलंकरण की वस्तु नहीं हैं। वे हैं दीवार सजाने की अपेक्षा अपने दिल में उतारने की वस्तु। वे हैं भित्ति को सुशोभित करने की अपेक्षा अपने भीतर को सँवारने की वस्तु। स्वामीजी का व्यक्तित्व मोहक है, भव्य है, दिव्य है। वे हमारे नेत्रों को लुभाते हैं। हम उनकी एक तस्वीर अपने कमरे की दीवार पर टाँग कर प्रसन्नचित्त हो जाते हैं। किन्तु इससे हमारे व्यक्तित्व में कोई रूपान्तरण नहीं होता। हमारे जीवन में कोई बदलाव नहीं आता। हम जस के तस रह जाते हैं।

आज जरूरत इस बात की है कि हम स्वामीजी को गंभीरता से ग्रहण करें। उन्हें पूरे मनोयोग से पढ़ें और गहराई से अपनावें। कम-से-कम उनके भारतीय व्याख्यानों को पढ़ें और उनके विचारों पर मनन करें। यदि उनके विचार हमें रुचें तो हम उन्हें अपने जीवन में उतारें। जिन्होंने ऐसा किया वे हमारे राष्ट्रपुरुष हो गये। महात्मा गाँधी, लोकमान्य तिलक, पंडित जवाहर लाल नेहरू आदि ने उनका गहन अध्ययन किया था। और इन सब ने स्वीकारा है कि स्वामीजी ने उनके

जीवन में गहन राष्ट्रीयता और प्रबल राष्ट्र-प्रेम की भावना सौगुणी अधिक बढ़ा दी।

आज हम स्वामीजी को पढ़ते हैं कम, उनकी तस्वीरें टाँगते हैं ज्यादा। अगर पढ़ते भी हैं तो उन्हें ग्रहण करते हैं कम, अपना गौरव बढ़ाते हैं ज्यादा। इससे देश को, हमारे नेताओं को और विशेष कर युवकों को कोई विशेष प्रेरणा नहीं मिलती। कोई विशेष लाभ नहीं होता। स्वामीजी अपनी आकृति से अधिक अपने सन्देशों में जीवन्त हैं। उनहोंने कहा था–'मैं एक निराकार आवाज हूँ।' इस निराकार आवाज को सुनने की आवश्यकता है। स्वामीजी ने चेतावनी भरे शब्दों में कहा था–"अपने भाइयों का नेतृत्व करने का नहीं, वरन उनकी सेवा करने का प्रयत्न करो। नेता बनने की इस क्रूर उन्मत्तता ने बड़े-बड़े जहाजों को इस जीवन रूपी समुद्र में डुबो दिया है।"

हम डूब रहें हैं। हम सो गये हैं। स्वामीजी की घोषणा है–"उठो, जागो, और लक्ष्य प्राप्त किये बिना रुको मत।" मगर आज हम सो गये हैं। हमें उठना होगा जागना होगा। भारत को बचाने के लिए, एक नया भारत गढ़ने के लिए हमें स्वामीजी का यह आह्वान सुनना ही होगा–"भारत के दीन-दुखियों के साथ एक होकर गर्व से पुकार कर कहो,–'प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है, भारतवासी मेरे प्राण हैं, भारत की देव-देवियाँ मेरे ईश्वर हैं, भारत का समाज मेरे बचपन का झूला, जवानी की फुलवारी और बुढ़ापे की काशी है' भाई कहो कि भारत की मिट्टी मेरा स्वर्ग है, भारत के कल्याण में मेरा कल्याण है और रात-दिन तुम्हारी यह रट लगी रहे–हे गौरीनाथ, हे जगदम्बे, मुझे मनुष्यत्व दो। माँ, मेरी दुर्बलता और कापुरुषता दूर कर दो। माँ मुझे मनुष्य बना दो।" यदि एक इस वाणी को ही हमने अपने जीवन में उतार लिया तो यह देश पुनः विश्व-विजेता हो जायेगा। ❑

गुरु बिन ज्ञान न पावै कोई

बोध कथा

घटना सिक्ख गुरु अमरदासजी के गुरु बनने से पहले की है। तब उनकी उम्र 72 वर्ष की थी। एक बार उनके यहाँ एक मेहमान आया। रात्रि को सोते समय उसने पूछा, "गुरु से मिले कितना समय हुआ है ?" "गुरु ? मेरे तो कोई गुरु नहीं हैं," अमरदासजी ने जवाब दिया। "क्या तुम्हारे कोई गुरु नहीं है ?"–पश्चातापयुक्त शब्दों में मेहमान ने पूछा। उसने आगे कहा, "तब तो तुम्हारा अब तक का जीवन व्यर्थ गया ! मुझे अगर मालूम रहता कि तुम निगुरे हो, तो मैं यहाँ भोजन ही न करता !"–ऐसा कहते हुए उसने अपना सामान बटोरा और बिना विश्राम किये चलता बना।

अमरदासजी को बड़ा दुःख हुआ कि उन्हें बुढापा आ गया और उनके मन में गुरु बनाने का कभी विचार ही न आया। इसी चिन्ता में उन्हें नींद न आयी। सुबह जब उठे तो उन्होंने अपने भाई की बहू बीबी अमरो को गुरुवाणी पढ़ते पाया। पढ़ना समाप्त होने पर उन्होंने उससे पूछा कि वह क्या पढ़ रही थी। उसने बताया कि वह गुरु नानक साहिब की बानी पढ़ रही थी, जिनकी गद्दी पर उसके पिताजी (अंगद साहिब) बैठे हैं।

अमरदासजी ने उससे कहा कि वह उनसे भेंट करा दे। बीबी अमरो ने कहा, "पिताजी को जब किसी से मिलना हो, तो वे स्वयं उसे बुलाते हैं। इसलिए आपसे भेंट नहीं हो सकेगी।" किन्तु अमरदासजी तो उनसे मिलने के लिए बेचैन थे, बोले, "यदि तू भेट करा देगी और वे नाराज होंगे, तो मुझ पर होंगे, तुझ पर नहीं ! मैं उन्हें मना लूँगा।"

आखिर मजबूर होकर वह उन्हें गुरु साहिब के पास ले गयी। उन्हें बाहर खड़ा करके जब वह अन्दर गयी, तो अंगद साहिब ने कहा, "जिन्हें साथ में लायी है, उन्हें अन्दर क्यों नहीं लायी ?" अन्दर ले जाने पर उन्हें गुरु साहिब ने गुरुमंत्र क्या दिया, रूहानी दौलत से उन्हें मालामाल कर दिया, और आगे चलकर उनकी गद्दी के वे ही अधिकारी बने।

❑

माया का स्वरूप

–स्वामी विवेकानन्द

हिन्दू जब कहते हैं कि 'संसार माया है', तो साधारण मनुष्य को धारणा होती है कि 'संसार एक भ्रम है'। इस प्रकार की व्याख्या का कुछ अधार है; क्योंकि बौद्ध दार्शनिकों की एक श्रेणी के विद्वान् बाह्य जगत् के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते थे। पर वेदान्त में माया का जो अन्तिम विकसित रूप है, वह न तो विज्ञानवाद है, न यथार्थवाद और न किसी तरह का सिद्धान्त ही। वह तो तथ्यों का सहज वर्णन मात्र है–हम क्या हैं और अपने चारों ओर हम क्या देखते हैं।

इस देश, काल और निमित्त में हम एक विशेषता यह देखते हैं कि वे अन्य वस्तुओं से पृथक् होकर नहीं रह सकते। तुम शुद्ध 'देश' की कल्पना करो, जिसमें न कोई रंग है, न सीमा, और न चारों ओर की किसी भी वस्तु से कोई संसर्ग है। तो तुम देखोगे कि तुम इसकी कल्पना कर ही नहीं सकते। देश (स्थान) सम्बन्धी विचार करते ही तुमको दो सीमाओं के बीच अथवा तीन वस्तुओं के बीच स्थित देश की कल्पना करनी होगी। अतः हमने देखा कि देश का अस्तित्व अन्य किसी वस्तु पर निर्भर रहता है। काल के विषय में भी यही बात है। शुद्ध काल के सम्बन्ध में तुम कोई धारणा नहीं कर सकते। काल की धारणा करने के लिए तुमको एक पूर्ववर्ती और एक परवर्ती घटना लेनी पड़ेगी और अनुक्रम की धारणा के द्वारा उन दोनों को मिलाना होगा। जिस प्रकार देश बाहर की दो वस्तुओं पर निर्भर रहता है, उसी प्रकार काल भी दो घटनाओं पर निर्भर रहता है। और 'निमित्त' अथवा 'कार्य-कारणवाद' की धारणा इस देश और काल पर निर्भर रहती है।

जैसे कोई भी व्यक्ति अपनी सत्ता को नहीं लाँघ सकता, वैसे ही देश और काल के नियम ने जो सीमा खड़ी कर दी है, उसका अतिक्रमण करने की क्षमता किसी में नहीं। देश-काल-निमित्त सम्बन्धी रहस्य को खोलने का प्रयत्न ही व्यर्थ है, क्योंकि इसकी चेष्टा करते ही इन तीनों की सत्ता स्वीकार करनी होगी। तब भला यह किस प्रकार सम्भव है ? और ऐसा होने पर फिर जगत् के अस्तित्व के कथन का अर्थ भी क्या है ? 'इस जगत् का अस्तित्व नहीं है-', 'जगत् मिथ्या है'– इसका अर्थ क्या है ? इसका यही अर्थ है कि उसका निरपेक्ष अस्तित्व नहीं है। मेरे, तुम्हारे और अन्य सबके मन के सम्बन्ध में इसका केवल सापेक्ष अस्तित्व है। हम पाँच इन्द्रियों द्वारा जगत् को जिस रूप में प्रत्यक्ष करते हैं, यदि हमारे एक इन्द्रिय और होती, तो हम इसमें और भी कुछ अधिक प्रत्यक्ष करते तथा और, अधिक इन्द्रिय सम्पन्न होने पर हम इसे और भी भिन्न रूप में देख पाते। अतएव इसकी यथार्थ सत्ता नहीं है–इसकी अपरिवर्तनीय, अचल, अनन्त सत्ता नहीं है। पर इसको अस्तित्वशून्य या असत् भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह तो वर्तमान है और इसमें तथा इसी के माध्यम से हम कार्य करते हैं। यह सत् और असत् का मिश्रण है।

चाहे पदार्थ कहो, चाहे चेतन, चाहे आत्मा, चाहे किसी भी नाम से क्यों न पुकारो, बात एक ही है–हम यह नहीं कह सकते कि ये सब हैं, और यह भी नहीं कह सकते कि ये सब नहीं हैं। हम इन सबको एक भी नहीं कह सकते और अनेक भी नहीं। यह प्रकाश और अन्धकार का खेल–यह अविविक्त, अपृथक् और अविभाज्य मिश्रण, जिसमें सारी घटनाएँ कभी सत्य मालूम होती हैं, कभी मिथ्या-सदा से चल रहा है। इसके कारण कभी लगता है कि हम जाग्रत हैं, कभी लगता है कि सोये हुए हैं। बस, यही माया है, यही वस्तु-स्थिति है। इसी माया में हमारा जन्म हुआ है, इसी में हम जीवित हैं; इसी में सोच-विचार करते हैं, इसी में स्वप्न देखते हैं। इसी में हम दार्शनिक हैं, इसी में साधु हैं; यही नहीं, हम इस माया में ही कभी दानव और कभी देवता हो जाते हैं। विचार के रथ पर चढ़कर चाहे जितनी दूर जाओ, अपनी धारणा को ऊँचे से ऊँचा बनाओ, उसे अनन्त या जो इच्छा हो, नाम दो, पर तो भी यह सब माया के ही भीतर है। इसके विपरीत हो ही नहीं सकता; और मनुष्य का जो कुछ ज्ञान है, वह बस, इस माया का ही साधारणीकरण है–इस माया के दिखनेवाले स्वरूप को ही जानने की चेष्टा करना है। यह माया नाम-रूप का कार्य है। जिस किसी वस्तु का रूप है, जो भी कुछ तुम्हारे मन में किसी प्रकार के भाव की जागृति कर देती है, वह सब माया के ही अन्तर्गत है। जो कुछ देश-काल-निमित्त के नियम के अधीन है, वही माया के अन्तर्गत है।

इस मायावाद को समझना सभी युगों में बड़ा कठिन रहा है। मैं तुमसे संक्षेप में कहता हूँ, मायावाद वास्तव में कोई वाद या मत विशेष नहीं है, वह देश, काल और निमित्त की समष्टि मात्र है–और इस देश, काल, निमित्त को आगे नाम-रूप में परिणत किया गया है। मान लो समुद्र में एक तरंग है। समुद्र से समुद्र की तरंगों का भेद केवल नाम और रूप में है, और इस नाम और रूप की तरंग से पृथक् कोई सत्ता भी नहीं है, नाम और रूप दोनों तरंग के साथ ही हैं, तरंगें विलीन हो जा सकती हैं; और तरंग में जो नाम और रूप हैं, वे भी

चाहे चिर काल के लिए विलीन हो जायँ, पर पानी पहले की तरह सम मात्रा में ही बना रहेगा। इस प्रकार यह माया ही तुममें और हममें, पशुओं में और मनुष्यों में, देवताओं में और मनुष्यों में भेद-भाव पैदा करती है। सच तो यह है कि यह माया ही है जिसने आत्मा को मानो लाखों प्राणियों में बाँध रखा है और उनकी परस्पर भिन्नता का बोध नाम और रूप से ही होता है। यदि उनका त्याग कर दिया जाय, नाम और रूप दूर कर दिये जायँ, तो वह सदा के लिए अन्तर्हित हो जायगी, तब तुम वास्तव में जो कुछ हो, वही रह जाओगे। यही माया है।

शंकराचार्य के अनुयायियों के अनुसार (सही अर्थ में ये ही अद्वैतवादी हैं, समस्त विश्व ही ब्रह्म का प्रातिभासिक रूप है। ब्रह्म विश्व का वास्तविक नहीं, केवल आभासी उपादान कारण है, इस सम्बन्ध में रज्जु और सर्प का प्रसिद्ध उदाहरण दिया जाता है। रज्जु जैसे आभासित सर्प होती है, वास्तव में सर्प नहीं होती। उसका सर्प में परिवर्तन नहीं होता। उसी प्रकार सारा विश्व वास्तव में सत् है ! सत् का परिवर्तन नहीं होता। हम इसमें जितने भी परिवर्तन पाते हैं, सभी आभास मात्र हैं। ये परिवर्तन देश, काल तथा निमित्त के कारण होते हैं, मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त की दृष्टि से नाम-रूप के कारण होते हैं। नाम और रूप के द्वारा ही एक वस्तु का दूसरी वस्तु से भेद किया जाता है। अतः नाम और रूप ही उन वस्तुओं के भेद के कारण हैं। वास्तव में दोनों वस्तुएँ एक हैं। (अद्वैत) वेदान्तियों के अनुसार सत् और जगत् (phenomenon) परस्पर भिन्न सत्ताएँ नहीं हैं। रज्जु का सर्प जैसा दीखना भ्रमात्मक है। भ्रम के समाप्त होने पर सर्प का दिखना भी बन्द हो जाता है। अज्ञानवश व्यक्ति जगत् को देखता है, ब्रह्म को नहीं। जब उसे ब्रह्म का ज्ञान होता है, तब उसके लिए जगत् नहीं होता। अज्ञान, जिसे माया कहते हैं, जगत् का कारण है, क्योंकि इसी के कारण निरपेक्ष अपरिवर्तनशील सत् व्यक्त जगत् के रूप में प्रतिभासित होता है। माया शून्य या असत् नहीं है। यह सत् भी नहीं है, क्योंकि निरपेक्ष अपरिवर्तनशील तत्त्व ही एकमात्र सत् है। पारमार्थिक दृष्टि से तो माया को असत् कहा जाना चाहिए, किन्तु इसे असत् भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि तब तो इसके कारण जगत् का प्रतिभासित होना भी सम्भव नहीं हो सकता। अतः यह न तो सत् है, न असत् है। वेदान्त में इसे अनिर्वचनीय कहते हैं।

एक बार नारद ने श्रीकृष्ण से कहा, 'प्रभो, माया कैसी है, मैं देखना चाहता हूँ।' एक दिन श्रीकृष्ण नारद को लेकर एक मरुस्थल की ओर चले। बहुत दूर जाने के बाद श्रीकृष्ण नारद से बोले, 'नारद, मुझे बड़ी प्यास लगी है। क्या कहीं से थोड़ा-सा पानी ला सकते हो ?' नारद बोले, 'प्रभो, ठहरिए, मैं अभी जल लाता हूँ।' यह कहकर नारद चले गये। कुछ दूर पर एक गाँव था, नारद वहीं जल की खोज में गये। एक मकान में जाकर उन्होंने दरवाजा खटखटाया। द्वार खुला और एक परम सुन्दरी कन्या उनके सम्मुख आ खड़ी हुई। उसे देखते ही नारद सब कुछ भूल गये। भगवान मेरी प्रतीक्षा कर रहे हों, वे प्यासे हों, हो सकता है, प्यास से उनके प्राण भी निकल जायँ–ये सारी बातें वे भूल गये। सब कुछ भूलकर नारद उस कन्या के साथ बातचीत करते रहे। उस दिन वे अपने प्रभु के पास लौटे ही नहीं। दूसरे दिन वे फिर उस लड़की के घर आ पहुँचे और उससे बातचीत करने लगे।

धीरे-धीरे बातचीत ने प्रणय का रूप धारण कर लिया। तब नारद ने उस कन्या के पिता के पास जाकर उस कन्या के साथ विवाह करने की अनुमति माँगी। विवाह हो गया। नव दम्पति उसी गाँव में रहने लगे। धीरे-धीरे उनकी सन्तानें भी हुईं। इस प्रकार बारह वर्ष बीत गये। इस बीच नारद के ससुर मर गये और वे उनकी सम्पति के उत्तराधिकारी हो गये। पुत्र-कलत्र, भूमि, पशु, सम्पत्ति, गृह आदि को लेकर नारद बड़े सुख-चैन से दिन बिताने लगे। कम-से-कम उन्हें तो यही लगने लगा कि वे बड़े सुखी हैं।

इतने में उस देश में बाढ़ आयी। रात के समय नदी दोनों कगारों को तोड़कर बहने लगी और सारा गाँव डूब गया। मकान गिरने लगे; मनुष्य और पशु बहकर डूबने लगे, नदी की धार में सब कुछ बहने लगा। नारद को भी भागना पड़ा। एक हाथ से उन्होंने स्त्री को पकड़ा, दूसरे हाथ से दो बच्चों को, और एक बालक को कन्धे पर बिठाकर वे उस भयंकर बाढ़ से बचने का प्रयत्न करने लगे। कुछ ही दूर जाने के बाद उन्हें लहरों का वेग अत्यन्त तीव्र प्रतीत होने लगा। कन्धे पर बैठे हुए शिशु की नारद किसी प्रकार रक्षा न कर सके; वह गिरकर तरंगों में बह गया। उसकी रक्षा करने के प्रयास में एक और बालक, जिसका हाथ वे पकड़े हुए थे, गिरकर डूब गया। निराशा और दुःख से नारद आर्तनाद करने लगे। अपनी पत्नी को वे अपने शरीर की सारी शक्ति लगाकर पकड़े हुए थे, अन्त में तरंगों के वेग से पत्नी भी उनके हाथ से छूट गयी और वे स्वयं तट पर जा गिरे एवं मिट्टी में लोटपोट हो बड़े कातर स्वर से विलाप करने लगे। इसी समय मानो किसी ने उनकी पीठ पर कोमल हाथ रखा और कहा, "बच्चे जल कहाँ है ? तुम जल लेने गये थे न, मैं तुम्हारी प्रतीक्षा में खड़ा हूँ। तुम्हें गये आधा घण्टा बीत चुका।" "आधा घण्टा !" नारद चिल्ला पड़े। उनके मन में तो बारह वर्ष बीत चुके थे, और आधे घण्टे के भीतर ही ये सब दृश्य उनके मन में से होकर निकल गये! और यही माया है ! ❑

माँ के सान्निध्य में

–स्वामी महादेवानन्द

(बंगला भाषा में स्वामी पूर्णात्मानन्द द्वारा सम्पादित पुस्तक श्री श्रीमायेर पद-प्रान्ते भाग-४ में संकलित प्रस्तुत लेख का अनुवाद श्री अरुण देव भट्टाचार्य ने किया है ।–सं०)

कोआलपाड़ा में उस समय स्वदेशी जागरण की बाढ़ आयी थी। हम तरुण लोग उसी पथ को अपनाकर चले थे। कोतुलपुर स्वदेशी जागरण का केन्द्र जैसा बना था। विष्णुपुर, इन्दास-आरामबाग थाना से पुलिस का आना-जाना कोआलपाड़ा में लगा रहता था। श्रीमाँ ने जब कोआलपाड़ा होकर कलकत्ता गमनागमन शुरू किया और केदारबाबू के घर में (बाद में जगदम्बा आश्रम में) ठहरना शुरू किया तब से ही हमारे चिन्तन में परिवर्तन होने लगा था। मैं आश्रम के कर्म से संयुक्त हो गया। हमारे शिक्षक महोदय केदारबाबू मुझको बुलाकर एकदिन बोले–''मति, एकबार माँ के पास से हो आओ; शायद उनकी कोई आवश्यकता हो।'' माँ उस समय केदारबाबू के घर पर अपने कमरे में अतिथियों के साथ ठहरी हुई थीं। केदारबाबू की इच्छानुसार मैं माँ से मिलने जा रहा था। पथ पर एक ही चिन्ता मन को सताती रही–'क्या स्वदेशी पथ छोड़कर मैंने अच्छा किया ? अथवा पुनः स्वदेशी पथ पर ही मैं चलूँ ?, कुछ देर बाद ही मनमें यह बात उठी कि जिस आदर्श का सन्धान अब मिला है वही तो अधिक महत् है। इस तरह के मानसिक द्वंद्व में मेरा उस समय मन चंचल हो रहा था। ऐसा सोचते हुए मैं केदारबाबू के घर पर पहुँचा। मैं वास्तव जगत् में वापस आया, माँ की आवाज को सुनकर। माँ ने पूछा था–'मति बेटा ? केदार ने कोई सूचना दी है ?' मेरी चेतना पर किसी ने जोरों से आघात किया। मैं जिस चिन्ता में जर्जर हो रहा था माँ की आवाज में उसका उत्तर मैं पा गया। माँ के प्रश्न का उत्तर देते हुए मैं बोला–'नहीं माँ, शिक्षक महोदय ने आपसे मिलने के लिए मुझको भेजा है। आपकी आवश्यकता जानने के लिए मुझको भेजा है।' माँ ने मुसकुराकर कहा–'नहीं बेटा, सब ठीक है।'

मैंने माँ को साष्टांग प्रणाम किया। तब माँ ने मेरे मस्तक पर हाथ रखकर कहा–''बेटा, ऐसी अनर्थक चिन्ता की आवश्यकता नहीं है। जिस पथ पर आये हो, वही सही पथ है। मैं तुमसे कहती हूँ। यहीं मन लगाकर रहो। वैसे हठीले कर्म से जन्मभूमि का सेवा कुछ होती है क्या बेटा ? मन का गठन करो। उसके बाद यदि कुछ करने का बचे तब ठाकुर ही तुमसे करबा लेंगे।'

माँ ने एक साथ इतनी बातें कह दीं। जो लोग उनके पास थे उन्होंने भी सब कुछ सुन लिया। अवश्य ही किसी को पता नहीं चला कि अचानक माँ ने इन सब बातों को क्यों कहा। किन्तु मैं भली भाँति समझ गया कि माँ से मन की बातों को छिपाकर रखना संभव नहीं है। माँ हैं अंतर्यामिनी। उसके बाद से स्वदेशी कार्य करने का विचार मन से सदा के लिए चला गया।

माँ की बातों को कहकर अंत करना कहाँ संभव है ? अग्रज (स्वामी परमेश्वरानन्द-श्रीमाँ के अंतरंग पार्षद तथा उनके एकांत अनुगत सेवक किशोरी महाराज) जब कोआलपाड़ा आश्रम के कार्य में लग गये, तब मुझको यह बात अच्छी नहीं लगी थी। उस समय मैंने यह सोचा भी नहीं था कि मेरा भविष्य भी इस पथ पर ही है। मैं सोचता था कि पूजा-ध्यान करके क्या होगा ? मैं चलता भी वैसा ही था। उसके बाद श्रीमाँ का कोआलपाड़ा गमनागमन शुरू हुआ। सब जाते हैं, इसी कुतूहल से प्रेरित होकर मैं भी आश्रम जाता था। उत्सव के समय थोड़ा काम भी करता था। स्वामीजी की पुस्तकें पढ़ने में मेरी रुचि रही थी। उनका चित्र भी रखता था। घटना दूसरी अथवा तीसरी बार की है। श्रीमाँ को प्रणाम करने गया। उस समय मेरी गर्भधात्री माँ इहलोक त्याग कर चुकी थीं। उस समय मैं साष्टांग प्रणाम करके उठ खड़ा हुआ। माँ ने मेरी ठुड्डी छू करके चूमा और आशीर्वाद दिया। उस समय माँ की ओर देखकर मैंने अपनी दिवंगत गर्भधात्री जननी को देखा। परम विस्मय सहित मैंने मातृचरण पर पुनः प्रणाम किया। उसपर माँ बोलीं–'क्या हुआ रे मति, अभी अभी तो तुमने प्रणाम किया!' मैंने उत्तर दिया–'कुछ तो नहीं।' माँ इस पर कुछ नहीं बोलीं। बाद में मुसकराकर बोलीं–''पागल बेटा !''

मेरी दीक्षा की घटना भी आश्चर्यजनक रही। मैं आश्रम से युक्त हो गया था। आश्रम में ठहरकर, काम करता था। किन्तु दीक्षा लेनी होगी और संन्यास लेना आवश्यक है–इन सब बातों पर माथा खपाता नहीं था।

आश्रम के बुजुर्ग लोग जैसा बोलते थे वैसा काम करता था। गाना-बजाना, भजन आदि से ठाकुर-माँ का नाम संकीर्तन करके समय बीतता रहा। संभवत: वह १९१७ ई० के अप्रैल का महीना रहा होगा। माँ तब जयरामबाटी में थीं। माँ को जूही फूल बेहद पसन्द है। किसी काम से मुझको देशड़ा जाना पड़ा था। वहाँ घोष-भवन के बागीचा में खूब जूही खिली हुई थी। मुझमें प्रबल इच्छा जगी कि उनके बागीचे से कुछ फूल लेकर माँ को जाकर दूँ। मुझको बारबार बगीचा की तरफ देखते हुए गृहस्वामी बोले-'इस साल खूब जूही खिली है। अपने आश्रम के लिए थोड़ा फूल ले जाओ। वहाँ से केला का पत्ता काटकर उसी में ले जाओ।' मैं इस पर आश्चर्यित तो हुआ। मैंने और विलम्ब नहीं किया। उत्तम फूल देखते ही मुझको माला गूँथने की इच्छा होती है। मैं फूल सहित सीधा जयरामबाटी हाजिर हो गया। मामीगण से सूई-धागा लेकर एक वृक्ष के नीचे बैठकर मैंने दो मालाएँ गूँथीं। दो माला गूँथने का कारण मैं जानता नहीं हूँ। उसके बाद माला युगल पर तालाब का पानी छिड़ककर मैं माँ से जाकर मिला। माँ उस समय स्नान समापन के बाद पूजा करने बैठी थीं। मेरे धीरे-धीरे कमरे में घुसकर मालाओं को उनके पास रखते ही माँ बोलीं-"वाह, खूब सुन्दर माला बनी है।" उसके बाद ही बोलीं-"मति, तुम स्नान करके जल्दी आओ। आज मैं तुमको दीक्षा दूँगी।' मैं भी यंत्रवत् स्नान करके माँ के पास हाजिर हो गया। माँ ने मुझको पास में बिछे हुए आसन पर बैठने का निर्देश दिया। उसके बाद माँ ने मंत्रदान किया। मेरी गुंथी गयी एक माला माँ ने ठाकुर को पहना दी। मंत्रदान के बाद माँ ने कहा-"पुष्प निवेदन करो।" मैंने पास रखी दूसरी माला को माँ के चरण युगल पर रखकर प्रणाम निवेदन किया। माँ ने अपना कर कमल मेरे मस्तक पर फेर दिया। मैं समझ गया कि माँ के कर कमल का स्पर्श पाकर मेरा जन्मांतर हुआ। ❑

श्रीरामकृष्ण का नरेन्द्र

–श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज

(श्रीरामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द–दोनों के बीच ऐसा एक अकाट्य सम्बन्ध विद्यमान है जिसके माध्यम-बिना हम उन दोनों में किसी को समझ नहीं पाते। श्रीरामकृष्ण को जानना हो तो जिस प्रकार स्वामीजी के जीवन और चिन्तन के प्रकाश से देखना होगा, उसी प्रकार स्वामी विवेकानन्द को समझना हो तो श्रीरामकृष्ण की वाणी और जीवन का आश्रय लेना होगा। वास्तव में स्वामी विवेकानन्द को श्रीरामकृष्ण ने जैसे पहचाना था उस तरह श्री श्री माँ को छोड़कर और किसी ने नहीं पहचाना था। वैसे ही स्वामीजी श्रीरामकृष्ण को जिस तरह जान सके थे, उनके और किसी गुरुभाई ने उस तरह नहीं पहचाना था। नरेन्द्रनाथ से स्वामी विवेकानन्द–इस महान परिवर्तन के प्रत्येक स्तर में श्रीरामकृष्ण की अपनी स्वयं की परिकल्पना एवं व्याकुलता थी। स्वामी जी का सम्पूर्ण कर्म, साधना, चिन्तन एवं वाणी के पीछे अनिवार्य रूप से श्रीरामकृष्ण ही थे और था उनका प्रभाव। रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के बारहवें अध्यक्ष परम पूज्यपाद श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज ने इस सत्य को अत्यन्त प्रांजल भाव से इस निबन्ध में व्याख्यायित किया है। अनुवादक हैं–रामकृष्ण मिशन, पोरबन्दर में कार्यरत स्वामी चिरन्तनानन्द।–सं०।)

स्वामी जी के कलकत्ता-प्रत्यावर्तन की शतवर्ष जयन्ती आ गयी। सन् १८९० ई० के जुलाई मास में वे कलकत्ता से तपस्या के उद्देश्य से बाहर निकले थे। उसके बाद वे कलकत्ता वापस आये थे। शिकागो धर्म महासभा में ऐतिहासिक सफलता के बाद १९ फरवरी, १८९७ को। कलकत्ता से वे किस दिन बाहर निकले थे वह तारीख ठीक-ठीक ज्ञात नहीं है। सभी के अज्ञात में निःसंबल परिव्राजक के वेश में वे बाहर निकले थे। उनके बाहर निकलने का संवाद मात्र श्री श्री माँ एवं गुरुभाईगण ही जानते थे। किन्तु जिस दिन वापस आये उस दिन वे विश्वविजयी थे। तब विश्वविख्यात व्यक्तित्व था उनका। इतिहास में उनके कलकत्ता आगमन का दिन १९ फरवरी चिरस्मरणीय हो गया है। हजारों लोगों की विपुल अभ्यर्थना द्वारा वंदित होकर वे वापस आये। उनके आगमन से पूरे देश में एक महान हलचल शुरू हुई। परन्तु जो विवेकानन्द भारत-परिक्रमा के लिए निकले थे एवं जो शिकागो धर्म महासभा में इतिहास-सृष्टि करके देश में वापस आ गए वे निश्चित ही श्रीरामकृष्ण के नरेन्द्र हैं।

स्वामीजी के जीवन के विभिन्न पक्षों को लेकर अब पंडितगण गवेषणा कर रहे हैं एवं सभी जान पा रहे हैं कि उनके व्यक्तित्व में कितनी विचित्रता थी, कितना बहुमुखी व्यक्तित्व था उनका। हमलोग समझ पा रहे हैं कि उनके जीवन एवं चरित्र के सम्बन्ध में अभी भी बहुत कुछ चर्चा करने को है, जो अभी तक विवेचित ही नहीं हुआ है। उनका व्यक्तित्व इतना विचित्र है कि उनके सम्बन्ध में जब हम चर्चा करने लगते हैं तब ऐसा लगता है कि हमारी सामर्थ्य मात्र सीमित ही नहीं, उनके व्यक्तित्व की विशालता का नाप करना हमारे लिए दुःसाध्य भी है। हमारी बुद्धि उनके व्यक्तित्व का उद्घाटन करने में समर्थ नहीं है। फिर भी, जितनी उनके संबंध में चर्चा करेंगे, जितना हम उनको विभिन्न पहलुओं के माध्यम से समझने की चेष्ट करेंगे–उतना हमारे व्यक्तिगत जीवन में एवं देश एवं विश्व के समष्टिगत जीवन में कल्याण होगा, इसमें सन्देह नहीं।

ठाकुर कहते थे, केशव के भीतर यदि एक सूर्य प्रकाशित है तो नरेन के भीतर इस प्रकार के अठारह सूर्य प्रकाशित हो रहे हैं। ठाकुर की बातों में किसी तरह की अस्पष्टता नहीं हैं। उन्होंने 'अठारह सूर्य' कहा था। अब उस अठारह सूर्य को हम किसी दिन विश्लेपण करके जान सकेंगे या नहीं, पता नहीं ! उनकी दृष्टि इतनी सूक्ष्म, इतनी भ्रान्तिहीन थी कि उस अठारह को उन्होंने निश्चय ही एकदम साफ-साफ देखा था। किन्तु हम यदि स्वामी जी के अठारह सूर्य तुल्य व्यक्तित्व के सम्बन्ध में चर्चा करने जाएँ तो हमारे द्वारा मात्र कल्पना द्वारा पक्ष विस्तार करना ही होगा। फिर वह अत्यन्त स्पष्ट होगा ऐसा भी नहीं। उसके भीतर फिर अनेक मतभेद भी रहेंगे। इसीलिए शायद इसकी चेष्टा अब तक किसी ने नहीं की। हम भी इस विषय में चेष्टा नहीं कर रहे हैं, इसकी सामर्थ्य भी हम लोगों में नहीं है। और उनके जीवन के जितने सब तथ्य आज तक प्रकाशित हुए हैं वे भी शायद उनके जीवन का विश्लेषण करने के लिए यथेष्ट नहीं है। नये-नये तथ्य आज भी आविष्कृत हो रहे हैं, नये-नये गवेषक अपनी स्वयं की बुद्धि एंव दृष्टिभंगी से चर्चा कर रहे हैं। उनकी प्रतिभा की, उनके व्यक्तित्व की और भी कितने पहलुओं की चर्चा होगी, कौन जानता है !

स्वामी विवेकानन्द को पहचाना था श्रीरामकृष्ण ने और श्रीरामकृष्ण को जाना था स्वामी विवेकानन्द ने। दोनों के बीच ऐसा एक अकाट्य संबंध विद्यमान है जिसके माध्यम के बिना हम उनकी महानता समझ नहीं पाते। श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र के लिए इतने व्याकुल होते थे

कि उनको न देखने से उनकी छाती के भीतर ऐसी व्यथा होती मानो कोई अंगोछा निचोड़ रहा हो, मानो बिल्ली नाखून से खरोंच रही है ! उन्होंने ये सब शब्द प्रयोग किये थे। फिर नरेन भी तूफान बरसात की परवाह न करके कलकत्ता से दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण के चरण-कमलों पर दौड़े चले आते थे।

स्वामी विवेकानन्द का स्वयं के संबंध में एक मूल्यांकन है। उन्होंने कहा था, ''विवेकानन्द जो कर गया है, उसे एक और विवेकानन्द होने से वह समझ पाता।'' इससे और अधिक सुन्दर मूल्यांकन और हो नहीं सकता। इससे अधिक सुन्दर ढंग से स्वामी जी के व्यक्तित्व का वैशिष्ट्य और कहा नहीं जा सकता। और एक विवेकानन्द की जरूरत है उनको जानने के लिए। हम लोग तो विवेकानन्द हैं नहीं, अतः विवेकानन्द को हम समझ सकेंगे नहीं।

स्वामी जी बचपन से ही दुर्दान्त थे। श्रीरामकृष्ण कहते हैं, वे सब में ही चतुर थे—ध्यानसिद्ध थे, फिर जब छत पर दौड़ा-दौड़ी करते तो, उनका अलग चेहरा होता। बातों में उनसे किसी के जीतने का उपाय नहीं था। कचकच करके सब की बातों को काट देते, इस संबंध में वे श्रीरामकृष्ण को भी नहीं छोड़ते थे। श्रीरामकृष्ण अवश्य इससे विरक्त नहीं होते थे—हँसते, आनन्द पाते थे। जो उस्ताद पहलवान हैं—उनके चेलों, शागिर्दों को सिखाने के समय देखा जाता है कि कभी-कभी वे भी हार मानते हैं। क्योंकि इससे उनके शागिर्दों में आत्मविश्वास आयेगा। ठाकुर ने नरेन की युक्तियों की बहुत प्रशंसा की है। फिर कभी-कभी जरूरत पड़ने पर थोड़ी सी मानो रास खींच लेते थे।

शिष्यों को तैयार करने के संबंध में ठाकुर की अपनी विशिष्टता थी, एक विशेष क्रम था। वे उन लोगों को कभी निरुत्साहित नहीं करते थे बल्कि प्रत्येक को अपने निज-निज भाव से बढ़ जाने के लिए उत्साह देते। फिर कभी विच्युति अथवा भूल संशोधन की आवश्यकता होने पर अत्यन्त स्नेह के साथ वह भी करते थे। किन्तु स्नेह के साथ करते इसलिए आवश्यकतानुसार कठोर होते नहीं थे, यह भी नहीं। नरेन्द्र के साथ उनका कितना प्रेमपूर्ण व्यवहार था तथापि बीच-बीच में वे एक कठोर आवरण तैयार कर कठोर शिक्षक की भाँति व्यवहार करते हैं और जरूरत होने पर भर्त्सना भी करते हैं। परन्तु इसके लिए मन में आघात पाने की कोई गुंजाइश नहीं थी, ऐसा था उनका स्नेह !

नरेन्द्रनाथ के संबंध में कितनी प्रकार से उन्होंने वर्णन किया था ! मानो किसी भी तरह से उनको तृप्ति नहीं हो रही है ! ''सप्तर्षियों में एक ऋषि'' कहते हैं। कहते हैं, 'अखण्ड के घर का' और कहते हैं, ''वह मेरी ससुराल है।, --कितनी ही बातें कहते हैं। और उनके रूप-गुण आदि की। वर्णन तो मानो शतमुख से कहने पर भी उन्हें तृप्ति नहीं हो रही है। नरेन्द्रनाथ स्वयं ही अवाक् हो जाते। ठाकुर की बातें उन्हें इतनी अधिक अतिशयोक्तिपूर्ण लगतीं कि कभी-कभी उन्हें संदेह होता, ये प्रकृतिस्थ तो हैं ! ठाकुर ने नरेन्द्र को कहा था, ''तुम साक्षात नारायण हो ! जीवों के दुःख में कातर हो देहधारण कर आये हो।'' नरेन्द्रनाथ को लगा था—''मैं विश्वनाथ दत्त का लड़का-मुझे ये क्या कहते हैं, मैं नारायण हूँ।'' ''परन्तु विचार करके देखा है, उनके व्यवहार में किसी प्रकार की अप्रकृतिस्थता का कोई चिह्न नहीं है फिर भी मानना नहीं चाहते ! एक दिन कहा था, 'देखिये, आपकी दशा राजा जड़भरत के समान होगी। हिरण का चिन्तन कर-करके, हिरण को स्नेह करके राजा भरत को अंत में हिरण का जन्म लेना पड़ा था ! आप 'नरेन- नरेन' करके अन्त में आपकी भी इसी तरह स्थिति होगी।' बालक स्वभाव श्रीरामकृष्ण सोच में पड़ गये। अन्य लोग कौन क्या कहते हैं इसके लिए उन्हें कोई सिर दर्द नहीं है परन्तु नरेन ने यह बात कही है ! नरेन तो साधारण व्यक्ति नहीं है। ठाकुर के मन में कुछ संशय उदित होने से उसके अपसारण के लिए एक उपाय था—माँ के पास, माँ भवतारिणी के पास जाना, उनको पूछना। माँ के पास जाकर उन्होंने पूछा, ''माँ, नरेन ऐसा कहता है !'' माँ ने कहा, ''वह क्या जानता है—वह तो छोटा लड़का है ! तुम उसके भीतर में नारायण को देखते हो इसलिए उसे इतना प्यार करते हो।'' ठाकुर निश्चिन्त हो गए। फिर निश्चिन्त होकर नरेन से कहा, ''जा साला, तुम्हारी बात और मैं नहीं सुनूँगा। माँ ने मुझसे कह दिया है, तुम्हारे भीतर मैं नारायण को देखता हूँ इसलिए तुमको इतना प्यार करता हूँ। जिस दिन तुम्हारे भीतर नारायण को नहीं देख पाऊँगा उस दिन तुम्हारा मुँह भी नहीं देख सकूँगा।''

ठाकुर के पास से नरेन्द्र ने जितना आदर पाया है उतना और किसी ने नहीं पाया है। नरेन्द्र ने इसे शतमुख से स्वीकार भी किया है। उन्होंने कहा था, ''श्रीरामकृष्ण ने जिस प्रकार प्यार किया था, जिस प्रकार अगाध विश्वास मेरे ऊपर रखा था, उस प्रकार और किसी ने नहीं किया। उस प्रकार का प्रेम एवं विश्वास करना और किसी के लिए संभव नहीं है।'' यह जो नरेन्द्र के प्रति उनका स्नेह एवं प्यार है, वह मात्र नरेन्द्रनाथ एक असाधारण आधार हैं, इसलिए नहीं, बल्कि ईश्वर का जो कार्य करने के लिए श्रीरामकृष्ण अपने अवतार रूप में आविर्भूत हुए थे, उसी आदर्श का धारक एवं वाहक

बने नरेन्द्रनाथ, एवं उस कार्य के लिए इस तरह सुयोग्य पात्र और कोई नहीं होगा, इसीलिए इतना स्नेह। बचपन से ही स्वामी जी का वैशिष्ट्य था कि सब जगह वे नेता होते। क्या खेल, क्या पढ़ना-लिखना, क्या किसी प्रकार का संगठन–सर्वत्र नेता होते। उनके लिए नेतृत्व ही, शीर्षस्थान ही निर्दिष्ट था। यह उनके लिए स्वाभाविक था।

स्वामी जी को साधारण दृष्टि से देखने पर लग सकता है कि वे महान तार्किक हैं। कभी-कभी वे अत्यन्त संशयी भी जान पड़ते हैं। कभी वे अहंकारी जान पड़ते हैं। सभी के ऊपर प्रभुत्व करने के लिए मानो वे सदैव तत्पर हैं। कभी-कभी वे स्वयं इन सब के विपरीत लगते। यह सब हमारे आंशिक अनुभव के कारण हुआ करता है। प्रश्न उपस्थित होता हैं कि वे भक्त हैं या ज्ञानी ? कभी लगता उनमें भक्ति ही प्रधान है–उनका भीतरी भाग भक्ति से भरपूर है। फिर कभी लगता कि वे मात्र ज्ञानी ही हैं। वास्तव में हम उनको समझ नहीं पाते हैं। यथार्थ में वे भक्त भी हैं और ज्ञानी भी। फिर वे इन दोनों के परे भी हैं। वे अद्वैतवादी हैं। वे "ज्ञानी हैं का मतलब शुष्क ज्ञानी नहीं। ज्ञानी मतलव उन्होंने विचार को ग्रहण किया हैं किन्तु उस विचार की मूलवस्तु या तत्त्व के अन्वेषण के लिए जो विचार है उसे गीता में 'वाद' कहा गया है। उन्होंने इसी 'वाद' का अनुसरण किया है। आँख बंदकर ग्रहण करना–जिसे 'अन्ध गो-लांगुल न्याय' कहते हैं। अर्थात् आँख वन्द कर जानवर की पूँछ पकड़कर बैकुंठ जाने के समान झूठी धर्मधारणा का उन्होंने उपहास किया है। उन्होंने कहा है, जो करो विचार करके करो, देख लेना, जाँच-परखकर लेना। यह उन्होंने सीखा है श्रीरामकृष्ण के पास से। श्रीरामकृष्ण ने उपदेश दिया हैं, "मैं जो बोलूँगा–"मैं वोल रहा हूँ इसलिए वह ग्रहण नहीं कर लेना। उसे जाँच-परख लेना। जो युक्तियुक्त होगा वही ग्रहण करना, नहीं तो नहीं करना।" "किसी ने नरेन्द्र से कहा था, "वे जव वोल रहे हैं तब मान ही लो न।" श्रीरामकृष्ण ने तुरन्त ही तीव्र रूप से तिरस्कार करते हुए कहा था, "यह फिर कैसी बात ? मैं बोल रहा हूँ इसलिए मान लेना क्यों ? प्रत्येक वात देख लेना, जाँच-परखकर लेना।" इस वात का स्वामी जी ने अक्षरशः पालन किया। श्रीरामकृष्ण की बातों को भी उन्होंने जाँच लिया था। उन्होंने कहा है, "गुरु के साथ लड़ाई शायद मेरे समान, और किसी शिष्य ने कभी भी नहीं की है। उनके साथ संघर्ष किया है एवं संघर्ष के फलस्वरूप हो सकता है हार मानी है। परन्तु संघर्ष करना छोड़ा नहीं। अर्थात् एक शब्द में कहें तो स्वामी जी एवं ठाकुर दोनों ही पराभव स्वीकार करने के पक्ष में नहीं थे। वे दोनों ही एक धातु से निर्मित थे। सब समय स्वामी जी ने ठाकुर के साथ लड़ाई की है। लड़ाई करके गुरु की प्रत्येक उक्ति का तात्पर्य हृदयंगम किया है। इसलिए श्रीरामकृष्ण के संबंध में उनकी अनुभूति दूसरों की अपेक्षा कितनी गहन है ! ठाकुर की उन्होंने बार-बार परीक्षा ली है जो हम लोगों के मन में गुरुभक्ति के विरुद्ध लगेगी या गुरुभक्ति के लिए हानिकर महसूस होगी। ठाकुर रुपया-पैसा स्पर्श नहीं कर सकते थे–स्वामी जी ने ठाकुर के बिस्तर के नीचे रुपया छिपाकर देखा है कि यह सत्य है या नहीं ? देखा था–सत्य ही है। ठाकुर नरेन्द्र द्वारा इस परीक्षा की बात नहीं जानते थे, किन्तु बिस्तर स्पर्श करते ही वे बिच्छू के डंक मारने से जैसा होता है, वैसे ही छटपटाकर उठ गए। इसके बाद देखा गया–बिस्तर के नीचे रुपया ! ठाकुर ने एकबार एक स्थान पर पानी पीना चाहा। किसी ने आकर एक गिलास पानी दिया, परन्तु वे वह पानी पी नहीं सके। उनके भक्तगण जानते थे, ठाकुर असत् व्यक्ति द्वारा छुई वस्तुओं को ग्रहण नहीं कर सकते थे। परन्तु जिस व्यक्ति ने जल लाया उसे देखने से ऐसा लगा था कि वह परम धार्मिक है। स्वामी जी के मन में संशय हुआ अतः पूछताछ कर खवर लेने लगे। पता चला–ठीक ही है, वह व्यक्ति बाहर से खूब धार्मिक दीखने से भी उसका चरित्र अच्छा नहीं था।

इस प्रकार स्वामीजी ने ठाकुर के प्रत्येक आचरण एवं वाणी को परीक्षा किये बिना ग्रहण नहीं किया एवं उन सबका गहराई से चिन्तन करके उनके तत्त्व का उद्घाटन किया। स्वामी जी का यह वक्तव्य उल्लेखनीय है–"ठाकुर की एक-एक बात से टोकरी-टोकरी भर दर्शन ग्रंथ लिखा जा सकता है।' एक गुरुभाई ने यह सुनकर कहा कहाँ, ठाकुर की इस तरह के गंभीर तात्पर्यपूर्ण बातों को हम लोग तो समझ नहीं पा रहे हैं।' तब स्वामी जी ने कहा–"ठाकुर की जिस किसी भी बात को लो–हाथी नारायण एवं महाबत नारायण की बात ही लो," यह कहकर वे इसका तात्पर्य समझाने लगे। सात दिन तक उसका तात्पर्य समझाना चलता रहा। जिन्हें वे समझा रहे थे उन सबने सुनकर कहा, 'इसके भीतर इतने तथ्य हैं यह तो हम लोग नहीं जानते थे।' बातचीत तो सभी सुनते हैं परन्तु उन बातों का जो गंभीर तात्पर्य है, वह कितने लोग समझते हैं ? स्वामी जी ठाकुर की प्रत्येक बात का अत्यन्त गंभीरतापूर्वक चिन्तन करते एवं जब प्रयोजन होता तब उसके तात्पर्य का उद्घाटन करते। कहना न होगा कि जिसने स्वामी जी के भाषणों को पढ़ा है उन लोगों को यह एक बात विशेषकर जाननी होगी कि वहाँ पर एक भी ऐसी बात नहीं हैं जिसका

ठाकुर की उक्तियों के साथ सामंजस्य नहीं हैं। प्रत्येक बात का विश्लेषण करने से देखा जाएगा कि ठाकुर की किसी न किसी उक्ति के साथ उसका मेल है एवं वे ही उक्तियाँ हैं सूत्र–जिनका अवलम्बन करके विस्तार करके आधुनिक मन के उपयोगी बनाकर स्वामी जी ने सुललित भाषा में व्यक्त किया। ये जो ठाकुर की उक्तियाँ एवं भावों की विशद रूप में व्यक्त करने की बात है उसके बारे में स्वामीजी ने स्वयं निष्कपट भाव से कहा है, "मैं जो बोल रहा हूँ सभी ठाकुर की बातें हैं। परन्तु फिर भी मेरी बातों में ऐसी कोई बात रहे जो संसार के लिए कल्याणकर नहीं है–वह उनकी नहीं, मेरी बात है। और जो कुछ संसार के लिए कल्याणकर है–वे सब उनकी बातें हैं। यह बात स्वामी जी ने मात्र गुरुभक्ति की अधिकता के कारण नहीं कही हैं बल्कि अपने अन्तर्मन से कही हैं। जितने दिन बीतते जा रहे हैं उतना हम समझ पा रहे हैं कि ठाकुर के भाव की, ठाकुर की बातों के तात्पर्य के संबंध में उनकी व्याख्या अपूर्व है ! सभी के लिए उपयोगी बनाकर, युगोपयोगी बनाकर उन्होंने ठाकुर की बातों एवं भावों को हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। उनके व्यवहार में, उनकी वाणी में सर्वत्र हम इसी सामंजस्य को देख पाते हैं कि वे रामकृष्णमय है। 'रामकृष्णमय'–यह मात्र कविता की भाषा नहीं है बल्कि सत्य-सत्य है। ठाकुर ने कहा था, 'मैं तुम्हारे भीतर में घुस गया हूँ।" स्वामी जी कहते हैं, "Lo the old man is entering into me !" (देखो, बुड्ढा आदमी मेरे भीतर में प्रवेश कर रहा है।) ठाकुर ने कहा, "अंग्रेजी में बोल रहे हो–मैं क्या नही समझता ? तुम बोल रहे हो, तुम्हारे भीतर मैं घुस रहा हूँ हाँ, मैं घुसूँगा–छटपट करके घुस जाऊँगा। तुम्हारे भीतर प्रवेश करूँगा।" करेंगे ही तो क्योंकि स्वामी जी उनके यन्त्र थे। ठाकुर जिस प्रकार जगन्माता के स्वरूप हैं स्वामी जी भी ठीक वैसे ही हैं। वे रामकृष्ण की नवीन आवृत्ति हैं, नवीन संस्करण हैं, जिसे अपेक्षाकृत सहज में हम कुछ धारण कर सकेंगे। श्रीरामकृष्ण को जानना, उनकी गहनता का चिन्तन करना हम लोगों के लिए संभव नहीं है, किन्तु स्वामीजी हम लोग के लिए बहुत बुद्धिगम्य हैं जिनकी सहायता से हम श्रीरामकृष्ण के सवरूप की कुछ कुछ धारणा कर सकेंगे फिर भी श्रीरामकृष्ण को जिस प्रकार हम समझ नहीं पाते स्वामीजी को भी उसी प्रकार सम्पूर्णरूप से समझ नहीं पाते।

स्वामीजी को बहुत बार हम राष्ट्र नेता कहकर पुकारते हैं। निश्चय ही वे देश के नेता हैं, भारत के नेता हैं। फिर भी वे मात्र भारत के नेता नहीं हैं–वे विश्व के नेता हैं। अपने जीवन के माध्यम से जगत् की आध्यात्मिक चिन्ता धारा को वे एक नया रूप दे गये। क्रमशः हमारे समक्ष स्पष्ट हो रहा है कि जगत् में एक नवीन भाव का आलोड़न स्वामी जी के माध्यम से शुरू हुआ है। संसार ने स्वामी जी का आविष्कार किया शिकागो धर्म महासभा में। परन्तु वहाँ पर उनका प्रकाश आंशिक है। उनके सम्पूर्ण जीवन में वही प्रकाश काम करता रहा था और जो आज तक समाप्त नहीं हुआ है। सूक्ष्म देह में वे वही उद्धार का कार्य किये जा रहे हैं। जैसे, श्रीरामकृष्ण उनके लीलापार्षद भी वैसे ही नित्य कार्य किये जा रहे हैं।

स्वामीजी का जीवन उनके अपने लिये नहीं था, यह बात हम सब अच्छी तरह समझ सकते हैं। स्वामी जी ने चाहा था, कि वे समाधि में डूबे रहेंगे और देह रक्षा के लिए कभी-कभी एक दो ग्रास अन्न ग्रहण करेंगे और पुनः समाधि में डूब जायेंगे। श्रीरामकृष्ण ने यह सुनकर उनकी भर्त्सना करते हुए कहा था, 'धिक्कार है तुमको ! तुम साधारण साधक के समान स्वयं के समाधि-सुख में व्यस्त रहोगे ? मैं सोच रहा था, कहाँ तुम एक विराट वटवृक्ष के समान बनोगे जिसकी छाया में आकर श्रान्त पथिक विश्राम लाभ करेंगे। और ऐसा न बनकर तुम केवल आत्मसुख में, समाधि-सुख में मग्न होकर रहोगे ?' सोचने से आश्चर्य होता है कि यह बात श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं जो स्वयं ही मुहूर्मुहुः समाधि में लीन हो रहे हैं ! परन्तु वे ही फिर तत्क्षण कहते हैं, "माँ मुझे बेहोश मत करना। मैं इन लोगों के (भक्तों के) साथ बातचीत करूँगा।" वे स्वयं समाधि में डूबे रहने के लिए नहीं आये हैं, स्वयं के समाधि-सुख की उन्होंने उपेक्षा की है। जिस समाधि के लिए युग-युगान्तर से, जन्म-जन्मान्तर से ऋषि-मुनिगण तपस्या कर रहे हैं–जिस समाधि-सुख को वे 'निर्विकल्प' सुख कहकर जानते हैं; उसकी उपेक्षा वे क्यों कर रहे हैं ? भक्तों के कल्याण के लिए। और उनके प्रधान पार्षद स्वामी जी कह रहे हैं, "मुझे एक व्यक्ति का भी दुःख दूर करने के लिए यदि शतसहस्र बार जन्म लेना पड़े तो उसके लिए भी मैं प्रस्तुत हूँ।" वे सवयं मुक्ति नहीं चाह रहे हैं। स्वयं मुक्ति चाहना निषिद्ध है। श्रीरामकृष्ण मना कर गये हैं। अतः वह रास्ता बन्द है। ठाकुर ने उनसे कहा है, 'जगत्कल्याण के लिए तुमको काम करना होगा। तुम जगतकल्याण के लिए निवेदित हो।" स्वामीजी ने कहा, "मैं नहीं कर सकूँगा।" ठाकुर ने कहा, "तुम नहीं कर सकोगे, तुम्हारी हड्डी करेगी।" माँ का कार्य करना पड़ेगा। फिर कहते हैं, "यह तुम्हारी समाधि के दरवाजे पर ताला लगा दिया। ताला जब खोल दूँगा तब फिर अपने स्थान वापस चले जाना।" स्वामीजी जी कभी-कभी आक्षेप करते हुए

कहते थे, "ठाकुर की माँ-काली मेरी गर्दन पकड़कर ऐसे घुमा-फिरा रही है कि किसी भी तरह इससे मेरी निवृत्ति नहीं है ! सोचा था हिमालय की गुफा में समाधि में मग्न रहूँगा, वहाँ से मुझे खींच लाए हैं।" श्रीरामकृष्ण ने उनको इसी प्रकार तैयार किया है और जगन्माता के कार्य के लिए उनको सम्पूर्ण रूप से उत्सर्ग कर दिया है। अन्यथा दूसरे ढंग से उनकी जीवन-धारा का प्रवाहित होना संभव नहीं था।

एक दिन की घटना है। गिरीश बाबू बलराम मंदिर में गये हैं। देख रहे हैं, स्वामी जी शिष्य के साथ वेदान्त चर्चा कर रहे हैं। स्वामीजी ने गिरीश बाबू से कहा, "जि० सि० ये सब तो तुमने कुछ किया नहीं !" गिरीश बाबू ने कहा, "वह तो हुआ, किन्तु यह जो संसार में इतने दुःख-कष्ट हैं, तुम्हारा वेदान्त इसका क्या उपाय बताता है, बोलो तो ! अमुक स्थान पर एक असहाय विधवा ने अपनी एकमात्र सन्तान को खो दिया, उसका दुःख दूर करने का उपाय क्या है ?" इस प्रकार एक के बाद एक दुःखपूर्ण बात कहकर वे ऐसे सब चित्र दिखाने लगे कि स्वामीजी की आँखों में आँसू आ गये। और सहन न कर सकने के कारण स्वामी जी वहाँ से उठकर चले गए। तब गिरीश बाबू ने शिष्य से कहा, "देखा बाँगाल ! तुम्हारे गुरु को हम लोग जो श्रद्धा करते हैं वह तुम्हारे इस वेदांत के लिए नहीं-उनके हृदय की विशालता के लिए करते हैं। देखा, उनका हृदय कितना विशाल है ? संसार का दुःख उनको किस प्रकार व्यथित कर रहा है ! जगत 'मिथ्या' है कहकर वे वेदान्ती साधुओं की तरह समाहित होकर अथवा उदासीन होकर रह नहीं सकते क्योंकि वे उस तरह के वेदान्ती नहीं थे।

स्वामी जी का वेदान्त जगत् छोड़कर नहीं, जगत को लेकर है। जगत् मिथ्या-यह वे नहीं कहते। ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या-यह सम्पूर्ण सत्य नहीं है। जगत् तो ब्रह्म की ही अभिव्यक्ति है। यह हुई वेदान्त की कार्यकारिता, व्यावहारिक प्रयोग। स्वामीजी अथवा ठाकुर के पूर्व इस प्रकार सुचारु ढंग से हमारे देश में शायद और किसी ने कभी भी यह बात नहीं कही है। यह हुआ स्वामी जी का 'प्रेक्टिकल वेदान्त'। हो सकती है सिद्धांत की दृष्टि से यह बात बहुत बार कही जा चुकी है कि इस जगत् में सभी ब्रह्ममय है। "एतदात्म्यमिदं सर्वम्" उपनिषद की बात है (छान्दोग्य उपनिषद, ६/८/७)। समस्त जगत ही ब्रह्मात्मक है। ब्रह्म ही यह सब हुये हैं। वे ही कार्य हुए हैं, वे ही कारण हुए हैं। वे ही समस्त जगत में परिव्याप्त हैं। शास्त्र में सब सिद्धान्त की बातें हैं किन्तु वे सब सिद्धान्त पोथी के पन्नों में ही रह गये हैं, जिस पोथी के पन्नों को कीड़े काट रहे हैं परन्तु हमारे जीवन में उसका ग्रहण नहीं हो रहा है। स्वामी जी ने इसीलिए हमलोगों को, विशेषकर भारतवासी पर तीव्र कटाक्ष किया है। तथापि यह भारत के ऋषियों का सिद्धान्त हैं जिसकी संसार में कोई तुलना नहीं है परन्तु इस सिद्धान्त की, इस प्रकार के अपूर्व सिद्धान्त की, इस प्रकार उपेक्षा करने की मिसाल भी यहाँ को छोड़ अन्यत्र कहीं भी नहीं है। एक विराट सत्य को व्यावहारिक रूप से प्रयोग करने से उसकी कितनी दूर तक संभावनाएँ निहित हैं, इस विषय में हम लोगों ने कभी भी ढूँढ़कर देखा नहीं अथवा उसका प्रयोग कर कभी अपने देश की उन्नति करने की चेष्टा नहीं की। जगतकल्याण का एकमात्र सूत्र यहीं पर विद्यमान है। सम्पूर्ण जगत् को आत्मवत् देखना-एक आत्मरूप मैं सर्वभूत में, सर्वभूत मुझमें-यह जो सिद्धान्त है, इसे व्यावहारिक रूप से प्रयोग करने की चेष्टा कभी भी नहीं हुई। हम वह कहानी जानते हैं-एक पंडित कह रहा है कि ब्रह्म ही सब कुछ हुए हैं इत्यादि। पंडित ट्रेन से जा रहा था। इसी समय एक धोबी को अपने कपड़े की गठरी सिर पर उठाये वहीं पर चढ़ते देख तुरन्त ही तुच्छ एवं अवज्ञा करते हुए पंडित ने धोबी से कहा, "ऐ धोबी, जा-जा चला जा यहाँ से। दूर हट । तुम्हारे पास की छाया पड़ जाएगी। जा, जा यहाँ से।" ट्रेन के एक सहयात्री ने कहा, "आप तो अभी कह रहे थे कि सभी ब्रह्म हैं !" पंडित ने तब कहा, "वह तो कहा था पारमार्थिक बात ! और यह तो व्यावहारिक क्षेत्र है। यहाँ क्या वह बात चलेगी !"

स्वामी जी कहते हैं, "जिस दिन हमारे देश में इस व्यावहारिक एवं पारमार्थिक बातों के बीच भेद की सृष्टि हुई उसी दिन से देश का सर्वनाश हुआ।" स्वामी जी ने यह बात ठाकुर की बातों का सूत्र पकड़कर ही कहा था-यह हमें याद रखना होगा। जैसे, ठाकुर ने "जीवों पर दया" शब्द पर कटाक्ष करते हुए कहा था, 'तुम दया करने वाले कौन हो ? तुम कीटाणुकीट। दया नहीं शिवज्ञान से जीव सेवा।" सर्वभूत में वे हैं-यही समझकर उनकी सेवा करने के लिए कहा। और भी एक बात उन्होंने कही है, "मिट्टी की मूर्ति में उनकी पूजा होती है और मनुष्य में उनकी पूजा क्यों नहीं होगी ? ठाकुर की बातों का ही स्वामी जी ने जगत में प्रचार किया है। वहीं उन्होंने पाया अपने 'प्रेक्टिकल वेदान्त' का सूत्र। स्वामी जी ने बारंबार सभी को सुनाया कि मनुष्य में उनकी पूजा के समान और दूसरी कोई पूजा नहीं है। यही पूजा सर्वश्रेष्ठ है। उन्होंने कहा, "संसार में

सर्वत्र उनको देखो। देखकर उनकी पूजा, उनकी सेवा करो।'' शास्त्र की ही यह बात है। परन्तु युक्ति की सहायता से इस तरह उसकी प्रतिष्ठा एवं व्यावहारिक प्रयोग इसके पहले और कभी नहीं हुआ। हम भागवत में पढ़ते हैं-''

''सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्मावभात्मनः ।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥''

(११/२/४५)

-सर्वभूतों में जो भगवान को प्रतिष्ठित देखते हैं, भगवान में सर्वभूतों को प्रतिष्ठित देखते हैं, जो आत्मा में सर्वभूत को प्रतिष्ठित देखते हैं, सर्वभूत में आत्मा को प्रतिष्ठित देखते हैं-वही श्रेष्ठ भक्त हैं।

इस दृष्टि से देखने से क्या स्वामी जी श्रेष्ठ भक्त नहीं हैं ? ठाकुर ने कहा है कि ज्ञानी का चेहरा कभी शुष्क नहीं होता। नरेन का चेहरा देखो, भक्त का चेहरा है, प्रेम से भरपूर। ठाकुर ने कहा था, ''माँ, मुझे शुष्क साधु नहीं बनाना।'' उन्होंने अपने शिष्य को भी शुष्क नहीं बनाया। प्रेमरस से भरपूर किया है, जो प्रेम सर्वत्र प्रवाहित है। जैसे, स्वामी जी ने ठाकुर के सम्बन्ध में लिखा है, ''आचण्डालाप्रतिहतरयो यस्य प्रेम प्रवाहः''-चण्डाल से लेकर सभी के लिए उनके प्रेम का प्रवाह अप्रतिहत था। ठाकुर के संबंध में यह बात स्वामी जी जैसे बोलते हैं, हम लोग भी स्वामी जी के सम्बन्ध में वैसी ही बात कह सकते हैं-शायद चाण्डाल आदि के प्रति ही उनका पक्ष-पात अधिक था क्योंकि उनको कष्ट अधिक है, वेदना अधिक है। वे अवहेलित हैं, उपेक्षित हैं। स्वामी जी का हृदय उन लोगों के लिए ही अधिक रोता था। अतः हमारे देश का, हमारी जाति का उद्धार करने के लिए स्वामी जी ने उस समय कहा था कि जो अवहेलित हैं उन लोगों की पहले उन्नति करनी होगी। ऐसा नहीं होने से देश कभी भी उठेगा नहीं। हमारे नेतृत्ववृन्द के पास से इन सब बातों की प्रतिध्वनि हम अब थोड़ा-थोड़ा कर सुन पा रहे हैं। परन्तु ये बातें मात्र बातें ही रह जाएँगी यदि स्वामी जी के समान हृदय उन लोगों का न हो।

स्वामी जी ने कहा है, समस्त जगत् का प्रयोजन भारत का कल्याण है। क्यों ? क्योंकि यदि भारत जागेगा, यदि भारत पुनः स्वमहिमा में प्रतिष्ठित होता है तो समस्त जगत पुनः अपने-अपने लक्ष्य के सम्बन्ध में अवहित हो सकेगा। स्वामी जी ने बार-बार कहा है, ''पूरा संसार भारत की ओर देख रहा है।'' भारत का जो अमूल्य तत्व सम्पद विद्यमान है इस तत्व के लिए विश्व आकुलता से अपेक्षा कर रहा है परन्तु जो इस तत्व के अधिकारी हैं, वे इस विषय में उदासीन हैं, वे भूल गये हैं। उन्हें इस तत्व को फिर से जानना होगा। भूली हुई वस्तु को फिर से अपना बनाना होगा एवं तभी वे जगत में इस तत्व को देने लायक बनेंगे। स्वामी जी बार-बार कहते हैं, ''भारत जो अभी तक बचा हुआ है उसका कारण है यही अपूर्व सम्पदा, जो यक्ष के धन के समान रहकर कुंडीबंद है। फिर भी इस दौलत को अपना बनाकर रखना वह भूल गया है।'' जैसे उपनिषद् ने कहा है-मिट्टी के नीचे रत्न गड़े हुए हैं, उसके ऊपर से मनुष्य आना जाना कर रहे हैं, इसके सम्बन्ध में उन्हें कुछ ज्ञान नहीं है। हम लोगों की भी ठीक यही दशा है। जो अमूल्य रत्न हमारे ऋषिगण हमारे लिये रख गये हैं-उसी 'रत्न' के सम्बन्ध में हम उदासीन हैं। स्वामी जी कहते हैं, ''यह आत्मविद्या तुम लोग अपने जीवन में जाग्रत करो। यह आत्मतत्व तुम लोग अपने भीतर प्रतिष्ठित करो। तब तुम लोगों का कल्याण होगा एवं तुम लोगों के माध्यम से समग्र जगत का कल्याण होगा।'' स्वामी जी के आशीर्वाद से हम सब जिससे उनकी इस आत्मविद्या के सम्बन्ध में अवहित हों एवं स्वयं के जीवन को उसी भाव से भावित करके, उनके इस जगत कल्याण कार्य में अपने साध्यानुसार सहायक बनें। इसलिए उनके, कलकत्ता-प्रत्यावर्तन की शतवर्ष जयन्ती में उनसे अपनी आन्तरिक प्रार्थना करते हैं।

(उद्बोधन के फाल्गुन १४०३, फरवरी १९६७ अंक से साभार अनूदित)

❑

तुम तो ईश्वर की सन्तान हो, अमर आनन्द के भागी हो, पवित्र और पूर्ण आत्मा हो। अतएव तुम कैसे अपने को जबरदस्ती दुर्बल कहते हो ? उठो, साहसी बनो, वीर्यवान होओ। सब उत्तरदायित्व अपने कंधे पर लो-यह याद रखो कि तुम स्वयं अपने भाग्य के निर्माता हो। तुम जो कुछ बल या सहायता चाहो, सब तुम्हारे ही भीतर विद्यमान हैं।

-स्वामी विवेकानन्द

(राष्ट्रीय युवा दिवस पर विशेष)

समाजोन्नयन और स्वामी विवेकानन्द

स्वामी शशांकानन्द
–सचिव, रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची

गुण और दोष मानव हृदय में एक साथ ही रहते हैं और ये एक ही सिक्के के दो पहलु हैं। कभी मानव हृदय दोषों की कीचड़ में फंसा संघर्षमय जीवन बिताता है तो कभी गुणों की प्रतिभा से ज्योतिर्मय जगत के राज्य का अधिकारी बनता है। जब मानव समाज दोषों के प्रबल प्रवाह में बहने लगता है तब समाज की अवनति होती है और जब यह समाज दोषों के चंगुल से मुक्त होकर सद्गुण सम्पन्न होता है तब ही उसकी उन्नति और अवनति एक के बाद दूसरी आती जाती रहती हैं। यही प्रकृति का नियम है। स्वामीजी के विचारों में इतिहास उन्नति और अवनति के युगों से गुजरता रहा है। अवनति के युगों का आना भविष्य की उन्नति के लिए उसी प्रकार आवश्यक सिद्ध हुआ है जिस प्रकार विशाल वृक्ष से एक सुन्दर फल गिरकर मुरझाता है, सड़ता है और फिर उसके विनाश से विशाल सुन्दर वृक्ष का अंकुर निकलता है। स्वामीजी की दृष्टि में वर्तमान युग अवनति की चरम सीमा पर खड़ा है और अब उसकी उन्नति का समय उपस्थित हुआ है।

अवनत समाज में चारों ओर अशान्ति, कलह और हाहाकार का साम्राज्य छाया रहता है। ऐसी परिस्थिति में समाज को उन्नति की ओर अग्रसर करने के लिए पुनः सुख और शान्ति लाने के लिए विवेकी चिन्तनशील महापुरुषों का जन्म होता है जो समाज के उत्थान के लिये युग प्रयोजन अनुसार साधनों में सक्रिय रहते हैं। किन्तु एक उन्नत समाज के गठन का प्रयास व्यापक दृष्टि की अपेक्षा रखता है। 19वीं शताब्दी के अन्त में समाज सुधारकों का तांता लगा था। उन सभी व्यक्तियों ने समाज की उन्नति के प्रयास किये थे। किन्तु, उनकी समस्त चेष्टायें सति प्रथा और बाल-विवाह को बन्द कराने, विधवा विवाह चालू कराने तथा मूर्ति पूजा के विरोध तक ही सीमित रहीं। स्वामी विवेकानन्दजी ने सुचिकित्सक की भाँति समाज की नाड़ी परीक्षा की, उसके हृदय-स्पन्दन को अनुभव किया और रोग की यथार्थ पहचान की। वे समस्याओं की जड़ तक गये। उन्होंने तत्कालीन समाज सुधार की प्रचेष्टाओं की जड़ तक गये। उन्होंने तत्कालीन समाज सुधार की प्रचेष्टाओं को निस्सार, खोखला और अधूरा पाया क्योंकि ये समाज में केवल उन उच्चवर्णों की समस्यायें थीं जो जनसाधारण का तिरस्कार करके स्वयं शिक्षित हुए थे। इन समस्याओं से भारत की 70% महिलाओं का कोई सम्बन्ध नहीं था। इन छोटी-मोटी समस्याओं को निपटाने मात्र से समाज की सार्विक उन्नति असम्भव थी।

इसीलिये स्वामीजी ने मानव-समाज की अवनति के मूल कारण को पहचाना था। उन्होंने कहा था, ''हमें समस्या की जड़ तक जाना होगा। जड़ में आग लगाओ और क्रमशः ऊपर उठने दो एवं एक अखण्ड भारतीय राष्ट्र संगठित करो। ''स्वामी जी जन-साधारण के जीवन में हमें आमूल सुधार की दिशा में सक्रिय होने का आदेश देते हैं। उन्होंने जनसाधारण की उन्नति में ही समाज की उन्नति का मार्ग दिखाया। स्वामीजी ने अपने एक पत्र में लिखा था, ''याद रखो राष्ट्र झोपड़ियों में रहता है।'' स्वामीजी के विचारों में जन साधारण की अवहेलना ही राष्ट्रीय पाप है, यही समाज के पतन का कारण है; जन साधारण की उन्नति में ही समाज या राष्ट्र की उन्नति है।

जरा देखिये तो हमारे जनसाधारण की दशा क्या है ? विदेशी आक्रमण, विदेशी विजेता सत्ताओं द्वारा अत्याचार, हजारों वर्षों की गुलामी और पुरोहित शक्ति से कुचला गया भारत का जनसाधारण आज जीर्ण-शीर्ण हो चुका है। ऋषियों की सन्तान आज दरिद्र, निरक्षर, मूर्ख, असहाय, दीन-हीन, भयभीत और सहमी हुई है। राजनैतिक स्वतन्त्रता के ५६ वर्षों के बाद भी भारत-भारती दरिद्र, निरक्षर, असहाय, भयभीत और असुरक्षित है; सामाजिक न्याय से वंचित जाति-भेद की दीवारों से बटी हुई है और वह अपने अस्तित्व को भी भूल गयी है। वह यह भी भूल गयी है कि वह मनुष्य है। सामर्थवान, क्षमतावान और बलवान व्यक्तियों द्वारा साधारण नर-नारियों पर अत्याचार, साम्प्रदायिक और राजनैतिक मतभेदों से निकलते हुए आग के शोलों से झुलसता हुआ जन-साधारण केवल मानवाधिकारों के नारे ही सुन पाता है। हिंसा, द्वेष, स्वार्थ-लालसा, क्षमता का भूखा मानव आज खून का प्यासा अपने माता-पिता भाई-बहनों की हत्या करने में हिचकिचाता नहीं। देश खन्डित होने लगे हैं, जातियाँ विभाजित हो रही हैं और परिवार अलग हो रहे हैं। कन्या-दान करने के बाद भी माता-पिता निश्चिन्त नहीं हो पाते, कब उनकी पुत्री वापस भेज दी जाएगी। दरिद्रता और बेरोजगारी बढ़ती जा रही है। वर्तमान शिक्षा प्राप्त युवक बाबुगिरी के चक्कर में, नौकरी की झूठी आशा में जीवन नष्ट कर रहे हैं। देश की उत्पादन शक्ति क्षीण हो रही है। आत्मनिर्भरता की बल दे कर

आज हमारे युवक नौकरी की तलाश में दर-दर की ठोकरें खाना पसंद करते हैं। भला ऐसे समाज की उन्नति कैसे हो ?

इस घोर निराशा में आशा की किरणें फूट पड़ीं जब स्वामी विवेकानन्दजी ने अपनी दिव्य-दृष्टि से यह देखा और फिर घोषणा की :

''और देखो, वह निद्रित भारत अब जागने लगा है। मानों हिमालय के प्राणपद वायु-स्पर्श से मृत देह के शिथिलप्राय अस्थि-मांस तक में प्राण संचार हो रहा है। जड़ता धीरे-धीरे दूर हो रही हैं जो अन्धे हैं, वे देख नहीं सकते और जो विकृतबुद्धि हैं वे समझ नहीं सकते कि हमारी मातृ-भूमि अपनी गंभीर निद्रा से अब जाग रही है। अब कोई उसे रोक नहीं सकता। अब यह फिर सो भी नहीं सकती। कोई बाह्य शक्ति इस समय इसे दबा नहीं सकती क्योंकि यह असाधारण शक्ति का देश अब जाग कर खड़ा हो रहा है।'

भारतीय समाज अभी जीवित है, मरा नहीं और उसे पुनरुज्जीवित करने वाली संजीवनी शक्ति अभी भी भारत में विद्यमान है। वह शक्ति है उसकी आध्यात्मिक चेतना। स्वामीजी के विचारों में धर्म और आध्यात्मिक विद्या का स्रोत अभी भी बह रहा है। उसी से अब सारे विश्व को प्लावित करने में ही मानव-कल्याण संभव है। इस प्लावन से ही 'त्याग और सेवा' की पवित्र अग्नि-ज्वालाओं में भस्म हो जायेंगे स्वार्थ, द्वन्द्व, भेद-बुद्धि, कलह और अत्याचार और उस होमकुन्ड से निकलेगा वह अमृत-कुंभ जो समस्त मानव जाति के लिये खोल देगा मुक्ति का द्वार और प्रशस्त करेगा विश्व-शांति का पथ; प्रसारित होगा आत्मज्ञान का भंडार जो अज्ञानजनित द्वन्द्व-भेद को मिटाकर मानव हृदय में प्रेम, सहानुभूति, मैत्री, करुणा और दया का संचार करेगा; श्वांसों में भर देगा निष्काम-कर्म का दम और मन को उड़ाकर ले जायेगा उच्चादर्शों से भरे गगन की ओर।

स्वामीजी के सोच में आध्यात्मिक चेतना ही भारतीय जन-जीवन का प्राण है, हमारा जीवन-रक्त है। यदि यह साफ बहता रहे, शुद्ध और सशक्त बना रहे तो सब ठीक हो जायेगा। स्वामीजी कहते हैं :

''राजनीतिक, सामाजिक, चाहे जिस किसी तरह की एहिक त्रुटियां हों, चाहे देश की निर्धनता ही क्यों न हो, यदि खून शुद्ध है तो सब सुधर जायेंगे। क्योंकि यदि रोग वाले कीटाणु शरीर से निकाल दिये जायें तो फिर दूसरी कोई बुराई खून समा नहीं सकती।----

''.....जब राष्ट्रीय जीवन कमजोर हो जाता है, तब हर तरह के रोग के कीटाणु उसके शरीर में इकट्ठे जमकर उसकी राजनीति, शिक्षा, और बुद्धि को रूग्ण बना देते हैं। अतएव उसकी चिकित्सा के लिए हमें इस बीमारी की जड़ तक पहुँचकर रक्त से कुल दोषों को निकाल देना चाहिए। तब उद्देश्य यह होगा कि मनुष्य बलवान हो, खून शुद्ध और शरीर तेजस्वी हो, जिससे वह सब बाहरी विषों को दबा और हटा देने लायक हो सके।''

(पृष्ठ 77-78 मेरे भारत जागो)

स्वामीजी के उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट है कि यदि हम अपने समाज को उन्नत करना चाहें, देश को प्रगति के पथ पर अग्रसर करना चाहें, विश्व को अखन्डता और एकता के सूत्र में पिरोना चाहें तो आध्यात्म-ज्ञान को जंगलों, पर्वतों और गुफाओं से निकालकर घर-घर में पहुँचाना होगा। इस ज्ञान के प्रसार से ही जातीय जीवन रक्त शुद्ध हो जाएगा। स्वामीजी ने कहा था, ''सैकड़ों वर्षों से लोगों को मनुष्य की हीनावस्था का ही ज्ञान कराया गया है। .....अब उसको आत्मतत्त्व सुनने दो, यह जान लेने दो कि उनमें से नीच से नीच में भी आत्मा विद्यमान है—वह आत्मा, जो न कभी मरती है, न जन्म लेती है (वि.सा. 5/119)।

यह आत्मा सम्बन्धी ज्ञान पहले तो लोगों में उनकी अन्तर्निहित दिव्यता, पवित्रता, अनन्त शक्ति और संभावनाओं की अनुभूति कराता है और फिर उनमें आत्म-श्रद्धा और आत्म विश्वास तथा निष्काम-प्रेम की भावना भरता है। यह ज्ञान हीनमन्यता की भावना दूर कर महान कार्यों के लिए प्रेरणा और साहस देता है। ऐसे लोग समाज के स्तंभ होते हैं और उन्हीं के द्वारा समाज में उन्नति लाना संभव है।

स्वामी विवेकानन्दजी ने अपनी एक कविता में लिखा था (मूल बंगाली में)

''बहुरूप में तव सन्मुख तज कहाँ खोजते हो ईश्वर।
जीवों को प्रेम करे जो जन, उसकी सेवा लेते ईश्वर॥''

आत्मा की अखण्डता का ज्ञान एक ही पत्थर से दो पक्षी मार सकता है। स्वामीजी ने हमें ''आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च'' इस भावना से कार्य करने का आदेश दिया है जिससे मोक्ष की प्राप्ति हो और साथ में दूसरों का हित साधन भी हो। स्वामीजी ने देश की उन्नति साधन के लिए उन युवकों का आह्वान किया था जो आध्यात्मिक-चेतना से प्रेरित होकर त्याग और सेवा के मंत्र में दीक्षित हो सकें; बलशाली, स्वस्थ, तीव्रा मेधा वाले उत्साह-युक्त युवक जो समाज कल्याण के लिए आत्मोत्सर्ग कर सकें। उन्हें सम्बोधित करते हुए स्वामीजी ने कहा था, ''मरते दम तक गरीबों और पद-दलितों के लिए सहानुभूति, यही हमारा आदर्श वाक्य है।'' समाज में दरिद्रता, निरक्षरता,

रोग और दैन्यता दूर करने के लिए स्वामीजी ने बहुत ही सुचिन्तित योजना बनायी थी जो हमें उनके प्रवचनों, वार्तालापों और पत्रों को पढ़ने से मिलती है। उनके विचारों में जन शिक्षा और जन-जागृति की परम आवश्यकता है। वे चाहते थे कि जन-साधारण को ऐसी शिक्षा दी जाए जिससे वह मनुष्य बन सके, उसका चरित्र-गठन हो सके, वह अपने पावों पर खड़ा हो सके, उसे अन्तर्निहित संभावनाओं के सम्बन्ध में ज्ञान का उपदेश और सरल भाषा में व्यापार, वाणिज्य, कृषि आदि गृहस्थ-जीवन के आवश्यक विषयों की शिक्षा देकर उसे दक्ष बनाया जाए; नैतिक तथा बौद्धिक दोनों शिक्षाओं के साथ-साथ कारीगरी शिक्षा भी दी जाए जिससे वह आत्मनिर्भर हो सके। आत्म-निर्भरता पर बल देते हुए उन्होंने कहा था, ''यदि सारी पृथ्वी की धन-राशि भारत के एक छोटे से गाँव में उड़ेल दी जाए तो भी उनका कल्याण नहीं हो सकता यदि वहाँ के लोग अपने पांव पर खड़ा होना न सीखें।''

यही आध्यात्मिक चेतना देश-मातृका की पूजा सिखाती है, देशवासियों में विराट-देवता (सर्वभूतों में प्रतिष्ठित एक देवता) की सेवा का मार्ग दिखाती है, और हमें सच्चा देश-भक्त बनाती है। इस ज्ञान के अभाव में नेता साधारण जनता के हित को अपने क्षुद्र स्वार्थ से कुचलता रहता है, उन्हें भूखा-नंगा रखकर अपनी झोली भरता रहता है, उन्हें आकाश के तले सुलाकर अपने लिए गगनचुंबी अट्टालिकाएँ खड़ी करता है और जनता को धोखा देने वाला होता है। किन्तु आत्म-चेता नेता तो जनसाधारण की दुर्दशा देखकर दुखी होता है, उसकी नींद हराम हो जाती है, हृदय की गति रुक जाती है और श्वास अवरूद्ध हो उठते हैं। वह व्याकुल होकर उनके कल्याण की चिन्ता करता है एवं उसके लिए कार्यरत होता है। समाज के उत्थान में तो एसे ही राजनीतिक नेताओं की आवश्यकता है। अवसरवादी राजनीति कभी देश का उत्थान नहीं कर सकती। आध्यात्मिकता की नींव पर ही राजनीति खड़ी रहनी चाहिए।

जाति-भेद या वर्ण-भेद समाजोन्नति में एक बहुत बड़ी बाधा होती है। इससे देश विभाजन, दंगे-फसाद और परिणामों की संभावना रहती है। स्वामीजी के विचारों में उच्च वर्णो को गिराने से या ब्राह्मणों के अस्तित्व को मिटा देने से जाति-भेद की समस्यायें दूर नहीं हो सकतीं, बल्कि ब्राह्मणेत्तर सभी जातियों को ब्राह्मणत्व की ओर ले जाने से जाति-विवाद की समाप्ति हो सकती है। स्वामीजी के विचारों में जाति की उत्पत्ति पेशे के अनुसार हुई है और पेशों में भिन्नता रहेगी ही। विवाद तो विशेषाधिकारों तथा उन्नति के मार्ग से किसी जाति को वंचित रखने का है। स्वामीजी की चिन्ताधारा में इसका समाधान इस प्रकार से किया जा सकता है। ब्राह्मण जो कुछ जानते हैं उसकी शिक्षा देकर, सदियों से जिस ज्ञान और संस्कृति का संचय किया है उसका प्रचार करके भारतीय जनता को उन्नत करने के लिए भरसक प्रयत्न करें। आत्मा की अखण्डता का प्रचार ही उनका कर्तव्य होना चाहिए। ब्राह्मणेतर जातियों के प्रति स्वामीजी कहते हैं कि समाचार पत्रों में इन सब वाद-विवादों और झगड़ों में शक्ति क्षय न करके, गृह-कलह का परित्याग कर के ब्राह्मणों के समान संस्कार प्राप्त करने के लिए पूरे दम से लग जायें। अर्थात् ब्राह्मणत्व की प्राप्ति में सब का समान अधिकार रहे जिससे आध्यात्मिक चेतना सम्पन्न होकर जन-साधारण उन्नति के मार्ग पर चल सके। (भारत का भविष्य)

अन्त में हम आध्यात्मिक चेतना के अभाव के उस परिणाम पर चर्चा करेंगे जिसके कारण आज जन-जीवन की पारिवारिक सुख शान्ति लुप्त हो रही है, परिवार टूट रहे हैं। एक दूसरे में एक अखण्ड आत्मा को न जानने के कारण भाई-भाई के खून का प्यासा है, माता-पिता को बोझा समझा जाता है और पत्नी को भोग्य वस्तु माना जाता है। किन्तु सब जीवों में ईश्वर ज्ञान रखने से प्रेमसुधा बहने लगेगी, आपस में पवित्र प्रेम, सहानुभूति, करुणा और मैत्री के वातावरण में सुखी परिवारों की सृष्टि होगी। और फिर भारत में वैदिक मन्त्र गूंज उठेंगे, ''मातृ-देवो भव, पितृ-देवो भव।''

इन विचारों में स्वामीजी ने एक नवीन भारत की कल्पना की थी, ''एक नवीन भारत निकल पड़े। निकले हल पकड़कर किसानों की कुटी भेदकर, मछुआ, माली, मोची, मेहतरों की झोपड़ियों से। निकल पड़े बनियों की दुकानों से, भुजवा के भाड़ के पास से, कारखाने से, हाट से, बाजार से। निकले झाड़ियों, जंगलों, पहाड़ों पर्वतों से।'' ❑

आधुनिक मानव एवं समन्वयात्मक योग

—स्वामी निखिलेश्वरानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द स्मारक, पोरबन्दर

मनुष्य की समस्त दौड़-भाग सुख एवं शांति को प्राप्त करने के लिए ही होती है। उसे लगता है कि धन-संपत्ति द्वारा मुझे चिर सुख एवं शांति मिलेगी। अत: उसे प्राप्त करने के लिए वह सतत् दौड़ता रहता है। परंतु उसे कहीं से भी सुख शांति नहीं मिलती है। उसकी स्थिति कस्तूरी मृग के समान होती है, अपनी नाभी में जो है उसे ही प्राप्त करने के लिए वह सर्वत्र भटकता रहता है। एक हिन्दी भजन में है—

''नाभि कमल में है कस्तूरी, वृथा मृग फिरै बन में रे।'' अपने स्वयं के अन्दर जो स्थित है, उसे बाहर ढूँढ़ने से वह कैसे प्राप्त होगा ? उसकी खोज में बाहर भटक- भटक कर सारा जीवन व्यतीत हो जाता है। मनुष्य के साथ भी ठीक ऐसा ही है। शाश्वत सुख एवं शांति का स्रोत उसके स्वयं के अंदर ही है। बाहर खोज-खोज कर वह भी अंत में मृग की भाँति मर जाता है परंतु उसे सच्ची शांति प्राप्त नहीं होती है।

शाश्वत शांति तो मनुष्य की आत्मा में रहती है। जिन्हें शाश्वत शांति प्राप्त करनी है उन्हें तो आत्मा का साक्षात्कार करना चाहिए। यद्यपि दैनिक जीवन में शांति प्राप्ति के उपायों का आचरण करने से अल्प समय में ही मन शांत हो जाता है, शांति की अनुभूति होती है, किन्तु यह शांति अस्थाई होती है, चेतना का अंग नहीं बनती है। चिरस्थाई एवं सच्ची शांति तो एक मात्र भगवान में ही है। इसलिए जब तक अपने स्वयं के अन्दर निवास करने वाले भगवान के साथ हम एकरूप नहीं हो जाते, तब-तक कभी भी इस शांति को हम प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

कठोपनिषद में कहा है—

'नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्
एको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा:
तेषां शांति: शाश्वती नेतरेषाम्' (५/१३)

जो समस्त नित्य चेतन आत्माओं की भी आत्मा है, जो स्वयं अकेला ही अंनत जीवों का उनके कर्मानुसार विधान करता है, ऐसे इस अंतरआत्मा में निवास करते परमात्मा को ही ज्ञानी लोग निरंतर देखते हैं। उन्हें ही शाश्वत शांति प्राप्त होती है, दूसरों को नहीं। शाश्वत शांति को भगवान ने स्वयं अपने पास रखा है। जो भगवान को बुलाते हैं, उन्हें प्रेम करते हैं, उन्हें जानते हैं, उन्हें ही वे यह शांति देते हैं। यहाँ सभी कुछ मिल सकता है। भगवान भोग, ऐश्वर्य सभी कुछ देते हैं। परंतु यदि शांति चाहिए तो सर्वप्रथम अंतर में निवास करने वाले भगवान के साथ एक रूप होना पड़ता है। उसके बाद ही शाश्वत शान्ति मिल सकती है।

छान्दोग्य उपनिषद् में भी कहा है—

''यो वै भूमा तत्सुखम् न अल्पे सुखमस्ति''
सीमित वस्तुओं से आनंद नहीं मिल सकता है,
वास्तव में अनन्त से ही परम सुख मिलता है।''

इस अनन्त की प्राप्ति कैसे हो सकती है ? जो समस्त ब्रह्मांड में व्याप्त है वही तो हमारे अंतर में भी रहता है। हमारे सबके निकट से निकट रहता है। उसे कहीं भी बाहर ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं है। एक बार अंतर में उसके दर्शन हो जाएँ फिर बाहर भी सर्वत्र उसके दर्शन हो जाएँगे। ''वह हमारे अन्दर रहकर भी हमें दिखाई क्यों नहीं देता है ?'' श्री रामकृष्ण से भी भक्तों ने ऐसा ही प्रश्न पूछा था। तब उन्होंने एक अंगोछे से अपना मुँह ढ़ँक लिया और कहा'' अब तुम लोग मुझे देख नहीं सकते हो, तो क्या मैं तुम्हारे पास नहीं हूँ ? यह अंगोछे की आड़ है। अत: मुझे देख नहीं सकते हो।'' उसी प्रकार अज्ञान रूपी पर्दे को लेकर मनुष्य स्वयं के अन्दर बसे हुए परमात्मा का दर्शन नहीं कर सकता है। इस अज्ञान के पर्दे को हटा दें, दूर कर दें तो हमें पता लग जायगा कि परमात्मा तो हमारा अपना स्वरूप ही है।

यह अज्ञान का पर्दा कैसे हट सकता है ? इस पर्दे को हटाने के लिए कोई एक उपाय नहीं है। कोई ज्ञान द्वारा कोई ध्यान द्वारा, कोई भक्ति द्वारा तो कोई निष्काम कर्म एवं सेवा द्वारा इस अज्ञान रूपी पर्दे को दूर करते हैं। परमात्मा की प्राप्ति के लिए चार मुख्य मार्ग हैं— राजयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग एवं कर्मयोग। इनमें से किसी भी मार्ग का अनुसरण कर या चारों का समन्वय कर परमात्मा को पाया जा सकता है। गीता में भी भगवान श्री कृष्ण ने भगवान प्राप्ति एवं शाश्वत शांति को प्राप्त करने के लिए इन चारों मार्गों के अनुसरण की ही बात कही है।

राजयोग—महर्षि पतंजलि ने अपने योगसूत्रों में राजयोग की साधना द्वारा परमात्मा को पाने का मार्ग बताया है। इस योग के आठ सोपान हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इन सोपानों को एक के बाद एक चढ़ते-चढ़ते ध्यान की सिद्धि प्राप्त होती है। चित्तरूपी सरोवर में उठती समस्त तरंगें शान्त हो जाती हैं, मन ध्यान में लीन हो

जाता है और अन्त में आठवाँ सोपान–निर्विकल्प समाधि प्राप्त होती है, तब अनंत सुख, अनंत शान्ति एवं अनंत आनंद की प्राप्ति होती है। राजयोग में मन पर नियंत्रण रखा जाता है। मन पर संयम नहीं हो तो ध्यान में एकाग्रता नहीं मिलती है। श्रीकृष्ण भगवान ने भी गीता के दूसरे अध्याय के छियासठवें श्लोक में कहा है–"जो मनो निग्रही नहीं है, उसकी बुद्धि स्थिर नहीं होती है। आत्म योग से रहित मानव को शान्ति नहीं मिलती है। फिर अशान्त को सुख कहाँ से मिलेगा ?"

ज्ञान योग–श्रीरामकृष्ण देव ने ज्ञान योग को बहुत ही सरल ढंग से समझाया है। वे कहते हैं–"हमेशा सत् और असत् का विचार करना, ईश्वर ही है सत् अर्थात् नित्य वस्तु। दूसरा सब कुछ केवल असत् अर्थात् अनित्य। ऐसा विचार करते-करते अनित्य वस्तुओं का मन से त्याग करना" ---यह है ज्ञान योग।" इसमें ईश्वर का चिंतन करते-करते बाद में उसकी अनुभूति होने लगती है। उसकी अनुभूति होते ही अज्ञान का पर्दा हट जाता है। अन्दर निवास करने वाले परम तत्त्व का दर्शन होता है। श्रीरामकृष्ण देव ज्ञानमार्गी की बन्दर के बच्चे से तुलना करते हैं–बन्दरी का बच्चा अपनी माँ को पकड़ कर रखता है। बच्चे की पकड़ ढीली हो जाए तो बच्चा छूटकर माँ से अलग होकर नीचे गिर जाए यह भी संभव है। ज्ञानयोग में ईश्वर का सतत् चिंतन करना–उनके बारे में ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न व्यक्ति को स्वयं ही करना होता है। अतः पूरी सावधानी रखनी पड़ती है। अन्यथा पतन का भय इस मार्ग में हमेशा रहता है परंतु सजग रहकर एवं प्रयत्न करने से ज्ञानी जल्दी साक्षात्कार कर सकता है। गीता में भी भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं "श्रद्धावान, ज्ञान परायण एवं इंद्रियों के संयम का पालन करने वाले को ज्ञान लाभ होता है और वह शीघ्र परम शान्ति को प्राप्त करता है।

(गीता ४/३९)

भक्ति योग–भक्ति द्वारा परमात्मा से मिलना-यह है भक्ति योग। यह मार्ग प्रेम का मार्ग है, शरणागति का मार्ग है। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं "भक्ति योग स्वाभाविक मधुर एवं नम्र है। ज्ञानयोगी की तरह वह कठिन मार्ग से नहीं जाता है। अतः इस मार्ग में किसी पतन का भय नहीं रहता है।" श्री रामकृष्ण देव इस मार्ग को बिल्ली के बच्चे का मार्ग कहते हैं। बिल्ली का बच्चा संपूर्ण रूप से अपनी माता पर निर्भर होता है। वह उसे मुँह में पकड़ कर इधर-उधर ले जाती है। माता की पकड़ मजबूत होती है। अतः उसे छूटकर गिर जाने का भय बिल्कुल नहीं रहता है। यह सबसे सुरक्षित मार्ग है। भगवान को प्रेम करने से नीचे गिरने की कोई संभावना नहीं रहती है। गोपियों का प्रेम वास्तव में एक श्रेष्ठ उदाहरण है। श्रीकृष्ण के प्रति उत्कट प्रेम के परिणाम स्वरूप गोपियों ने परमात्मा के साथ जो तद्रूपता प्राप्त कर ली थी वैसी तद्रूपता वर्षों की तपस्या के बाद योगी को प्राप्त होती है।

निष्ठापूर्वक भक्ति करने से चाहे जैसा भी पापी मनुष्य है, वह शांति प्राप्त कर सकता है। यह बात श्रीकृष्ण ने गीता के नवें अध्याय ३०-३१ श्लोक में बतायी है–वे कहते हैं "बड़ा से बड़ा कुकर्मी होने के बाद भी जो अनन्य भाव से मेरी उपासना करता है उसे साधु ही समझना चाहिए क्योंकि अब वह उत्तम रास्ते पर चल पड़ा है।

हे कुन्ती पुत्र वह थोड़े समय में ही धर्मात्मा बन जाता है एवं नित्यशांति प्राप्त करता है। तू निश्चयपूर्वक यह जान ले कि मेरे भक्त का कभी भी विनाश नहीं होता है"।

कर्मयोग–किसी भी फल की अपेक्षा किये बिना निष्काम भाव से कर्म करते रहना, परमात्मा को अर्पणरूप में कर्म करना-यह है कर्मयोग। निष्काम भाव से कर्म करते-करते मनुष्य का अंह बहुत जल्दी से पिघल जाता है। अन्य की सेवा करते-करते चित्त शुद्ध हो जाता है, मन शांत बन जाता है। अतः कर्मयोग द्वारा मनुष्य ईश्वर के नजदीक जल्दी पहुँच सकता है। स्वमी विवेकानंद ने कहा है–"जो दूसरे के दुःखों को दूर करने के लिए कर्म करता है उसके स्वयं के दुःख अपने आप ही दूर हो जाते हैं। जो दूसरों को प्रसन्न करता है, उसे प्रसन्नता अपने आप मिल जाती है। दूसरों की सेवा करते उनके दुःखों को देखकर संसार की असारता का अनुभव हो जाता है, एवं दुःखमय संसार के प्रति अनासक्ति पैदा हो जाती है।" इन दुःखों से मुक्त करनेवाली एकमात्र शक्ति है, वह है भगवान, इसकी अनुभूति बार-बार होती है। इससे ईश्वर के प्रति श्रद्धा दृढ़ हो जाती है। सेवा साधना द्वारा साक्षात्कार का मार्ग सहज हो जाता है। गीता में कर्मफल की महिमा को समझाते हुए भगवान कृष्ण कहते हैं "अभ्यास से ज्ञान श्रेष्ठ है, ज्ञान से ध्यान श्रेष्ठ है, ध्यान से कर्मफल का त्याग श्रेष्ठ है। त्याग से शीघ्र शान्ति प्राप्त होती है।"

इनमें से किसी भी एक मार्ग द्वारा आत्मदर्शन हो सकता है। परंतु आधुनिक मानव के लिए किसी एक मार्ग के अनुसरण में बहुत भय रहता है। जबकि चारों योगों का समन्वय कर साधना करने से प्रत्येक मार्ग के भय से निवारण हो सकता है एवं एक साथ मनुष्य के

सारे करणों, मन, बुद्धि, हृदय और शरीर का संतुलित शीघ्र विकास होता है। परमात्मा की प्राप्ति जल्दी हो सकती है। उससे शाश्वत शांति भी जल्दी प्राप्त की जा सकती है।

मा शुचः–परमात्मा की प्राप्ति के लिए बताये हुए इन चारों योगों की साधना पद्धति द्वारा ही अंतर्निहित परमात्मा को आवृत करनेवाले अज्ञान के पर्दे को हटाया जा सकता है। परंतु इसमें प्रत्येक साधना पद्धति का भलीभाँति पालन करना चाहिए। इसमें किसी भी प्रकार की शिथिलता नहीं होनी चाहिए। परंतु यदि कोई नियमपूर्वक इस साधना पद्धति का आचरण नहीं कर सके तो क्या उसके लिए शांति प्राप्त करना संभव है ? क्या उसकी शांति प्राप्त करने की लालसा कभी परिपूर्ण नहीं होगी ? क्या जन्म-जन्मांतर तक उसे शाश्वत शांति की खोज में मात्र भटकना ही पड़ेगा ?

नहीं, ऐसा नहीं है। योगों की कठिन तपश्चर्या एवं दुर्बल नियमों का पालन नहीं करने सकने वाले के लिए भी भगवान की शाश्वत शांति के द्वार खुले हुए हैं। शांति की लालसा करने वाले मनुष्य को भगवान ने अभय वरदान दिया है कि "चाहे तुझे किसी भी प्रकार की योग साधना नहीं आती है, चाहे तूने कोई भी व्रत-तप, जप-उपवास नहीं किया है, तूने कभी भी मेरी पूजा-उपासना नहीं की हो, तो भी क्या हुआ ? तू चिंता मतकर, मैं हूँ न ! बस ! तू मेरे पास चला आ । तुझे जो शांति चाहिए, जो आनंद चाहिए, वह मैं तुझे दूँगा।" भगवान ने अर्जुन के माध्यम से सभी मनुष्यों को यह अभय वचन दिया है। सबके लिए शरणागति का सरल से सरल रास्ता बता दिया है। भगवान श्री कृष्ण गीता में कहते हैं–

"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥
तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥"

(गीता १८/६१/६२)

हे अर्जुन, ईश्वर सब के हृदय में स्थित होकर, शरीर रूपी यंत्र में आरुढ़ समस्त प्राणियों को अपनी माया में भ्रमण करा रहा है, हे भारत ! तू सब तरह से उसकी शरण में जा। उसकी कृपा से तुझे परमशांति और नित्य धाम की प्राप्ति होगी।

अनन्य भाव से भगवान की शरण में जाने से, बाद में कोई चिंता नहीं रहती है। वे तो कृपा के, वत्सलता के सागर हैं, शांति के अक्षयधाम हैं। उनके पास जाने से संसार के त्रिविध तापों का शमन हो जाता है। मन के उद्वेग शांत हो जाते हैं। उनके एक कृपा-कटाक्ष से आसक्ति के सब बंधनों से छुटकारा मिल जाता है। भगवान श्रीकृष्ण ने स्वमुख से ऐसा अभय वरदान दिया है।

सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

गीता १८/६६

सभी धर्मों को त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्व-शक्तिमान, सर्वाधार परमेश्वर की शरण में आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा। तू शोक मत कर।

इस प्रकार भगवान स्वयं ही आह्वान करते हैं, अभय देते हैं, अपनी शरण में आने के लिए कहते हैं, वरदान देते हैं कि तू दुःखी किसलिए होता है ? मैं तुझे सब पापों से मुक्त कर दूँगा। बस, तू मेरे पास आ जा। जब भगवान स्वयं इस प्रकार से अपने पास बुला रहे हैं तो चलिए हम भगवान की शरण में जाकर उनके परम आनंद और शाश्वत शांति के सह भागी बन जाएँ।

❑

नाव पानी में रहे तो कोई हर्ज नहीं, पर नाव के अन्दर पानी न रहे। वरना वह डूब जाएगी। साधक संसार में रहे तो कोई हर्ज नहीं, परन्तु साधक के भीतर संसार न रहे।"

–श्रीरामकृष्ण परमहंस

"गीता शब्द का लगातार उच्चारण करने से गी तागी तागी तागी........'"

अर्थात् 'त्यागी, त्यागी' निकलने लगता है। अर्थात् गीता यही कहती है कि हे जीव, सर्वस्व का त्याग कर ईश्वर के पाद-पदों में चित्त लगा।"

–श्रीरामकृष्ण परमहंस

आधुनिक नारियों को माँ सारदा का संदेश

–डॉ० उषा वर्मा

(रामकृष्ण मिशन आश्रम, छपरा में ३ जनवरी, २००५ को दिये गये व्याख्यान का सारांश–सं०), छपरा

पिछले एक वर्ष से माँ सारदा की 150 वीं जयन्ती समग्र विश्व के साथ छपरे में भी सोल्लास मनायी जाती रही है। आज समापन दिवस है। १८५३ ई० के २२ दिसम्बर-अगहन कृष्ण सप्तमी दिन गुरुवार को पश्चिम बंगाल के एक छोटे से गाँव जयरामबाटी में–एक गरीब ब्राह्मण परिवार में एक विलक्षण बालिका का जन्म हुआ था। माता श्यामासुन्दरी एवं पिता रामचन्द्र मुखोपाध्याय ने बालिका का नाम रखा–सारदामणि। यही बालिका आगे चलकर छः वर्ष की होते-न-होते श्री रामकृष्ण देव को ब्याह दी गई। यही माँ सारदा के रूप में जानी जाती है। जगत् जननी के रूप में पूजी जाती हैं। स्वामी विवेकानन्द इन्हें बगलामुखी देवी का अवतार मानते थे। लाटू महाराज ने इन्हें साक्षात् लक्ष्मी के रूप में देखा था। इनके पति श्री रामकृष्ण परमहंस ने इनकी पूजा माँ काली के रूप में की थी और इनके लिए कहा करते थे–''यह मेरी शक्ति है–साक्षात सरस्वती-ज्ञान देने आई है।'' इनके लिए सिस्टर निवेदिता ने कहा था–''महिलाओं के प्रसंग में माँ सारदा अन्तिम सत्य हैं।'' सचमुच इनसे अच्छी इनसे पूर्ण महिला की कल्पना नहीं की जा सकती। माँ सारदा के सम्पर्क में जो भी आया, अभिभूत हुआ।

ऊपर-ऊपर से देखने में माँ सारदा बहुत साधारण लगती हैं। एक अति साधारण महिला। एक गरीब परिवार की बेटी। एक गरीब परिवार की बहु। स्कूल-कॉलेज की शिक्षा-दीक्षा से रहित। डिग्री-डिप्लोमा से वंचित। एक दम घरेलू। पर्दे में रहने वाली। मेले में माता-पिता भाई-बहनों की सेवा करने वाली। आवश्यकता पड़ने पर, अकाल आदि के अवसर पर, गाँव-जवार के लोगों की सेवा में तत्पर रहने वाली। ससुराल में सास और पति के प्रति सेवा भाव से आपूरित-समर्पित। पति के तमाम भक्तों को अपनी संतान की तरह प्यार करने वाली। इतनी सरल-सहज कि किसी काम में कोई संकोच नहीं। किसी को खाना खिलाना हो या जूठन उठाना जरा भी दम्भ नहीं, अभिमान नहीं। साधारण लिवास में रहने वाली। सादा भोजन करने वाली। साधारण घर में रहने वाली। न ड्राइंग रूम का ताम-झाम न डायनिंग हॉल की सजावट। न देशी-विदेशी खूबसूरत सामानों का जखीरा। न तथाकथित कोई बड़ा पद। फिर भी लोग इनके आगे नत मस्तक होने को व्याकुल। इनके चरणों में शीश नवाने को, इन चरणों की धूल अपने माथे से लगाने को बेताब। इनके स्नेह-सान्निध्य के लिए आशीर्वाद के लिए विकल। इनके हाथ से एक मुट्ठी मुड़ी पाकर अपने को बड़भागी मानते थे लोग। इनका नाम लेकर, इनका उपदेश सुन कर इनसे दीक्षा लेकर लोग राहत महसूस करते रहे। अपने को धन्य मानते रहे। आज इनके जन्म के १५१ वर्षों के बाद–देह लीला संवरण के ८५ वर्षो बाद भी इनके प्रति वही श्रद्धा वही भक्ति ! बल्कि सच कहा जाय तो पहले से भी अधिक। यह दुनिया तो भूलने में माहिर है। बड़े-बड़े राजाओं को भूल गई। राजनीतिक हस्तियों को भूल जाती है। धनवानों, बलवानों, विद्वानों और रूपवानों को भी भूल जाती है। लोग लारा दत्ता को भूल जायेंगे। ऐश्वर्या राय को भी। कल्पना चावला को भी। अंतरिक्ष यात्री राकेश शर्मा को भी। किन्तु माँ सारदा को भूलना मुमकिन नहीं है। माँ आज भी आदरणीय हैं। पूजनीय हैं। अनुकरणीया हैं। दुनियादारी की भाषा में कहें तो माँ सारदा का तो कोई नाम लेवा भी नहीं होना चाहिए आज। जिसे लोग वंश के नाम से जानते हैं और अपने लोक-परलोक की सुरक्षा-अमरता के लिए अनिवार्य मानते हैं–वैसा कोई वंश माँ सारदा को नहीं रहा। एक बार ठाकुर की सास ने ठाकुर को सुनाकर किसी से कहा था कि किस पागल दामाद से मेरी बेटी ब्याही गई कि उसे माँ कहने वाला भी कोई नहीं है। ठाकुर ने हँसते हुए अपनी सास से कहा था कि आपकी बेटी को माँ कहने वालों की संख्या इतनी अधिक होगी कि परेशान हो जायेंगी। माँ सुनते-सुनते उन सब को सम्भालते-सम्भालते हुआ भी यही। माँ सारदा के जीवन-काल में ही इन्हें तहे दिल से अपनी सगी माँ मानने कहने वालों की संख्या हजरों थी। आज उनकी संख्या में इजाफा ही हुआ है और रोज इजाफा ही होता जा रहा है। देश-विदेश में माँ सारदा को माँ कहकर सम्बोधित करने वालों की, इनकी तस्वीर सामने रखकर पूजा अर्चना करने वालों की, अपना दुःख-सुख बाँटने वालों की संख्या बढ़ती ही जा रही है। इन्हें माँ कहना कितना सुकून देने वाला है, कितना आह्लादक रोमांचक है यह वही जानते हैं जिन पर माँ की महती अहैतुकी कृपा है। माँ ने अपनी सभी संतानों को सम्बोधित करते हुए एक भक्त महिला के बहाने कहा था–बेटी हमेशा याद रखना कि मेरी एक माँ है–अपनी सगी माँ।

प्राय: सभी माताएँ अपनी बेटियों को जीवन जीने के कुछ मंत्र देती हैं–जीवन जीने की कला सिखाती हैं। माँ सारदा ने भी अपनी बेटियों के लिए, हर युग की बेटियों के लिए, कुछ जीवनोपयोगी मंत्र दिये हैं। इन मंत्रों पर अमल कर वे अपना जीवन सार्थक कर सकती हैं–सुख-शांति से भर सकती हैं।

किन्तु, माँ सारदा के मंत्र भाषण के रूप में नहीं मिलते। माँ ने भाषण के रूप में मंच से कभी कुछ कहा भी नहीं। जो कहा, अपने आचरण से कहा। जैसा चलना श्रेयस्कर था, वैसा चल कर दिखाया। जैसा जीवन अनुकरणीय था वैसा जी कर दिखाया मानो कह रही हों–देखों आदरणीया होने के लिए यों जीया जाता है–संसार में।

आज हम २१वीं शताब्दी में जी रहे हैं। आधुनिक युग की महिलाओं ने बहुत प्रगति की है। अब बहुत-सी महिलाओं के पास स्कूल-कॉलेज की डिग्रियाँ हैं–डिप्लोमा है। पद हैं–सुख है, सुविधा है, सम्पन्नता है। नारी पुरुषों से कंधा मिलाकर चल रही है। धरती से अंतरिक्ष तक उनके साथ चल कर अपनी अद्‌भुत क्षमता का सबूत दे रही है। आज की तारीख में ऐसा कोई क्षेत्र नहीं बचा है जिसमें महिलाओं की भागीदारी नहीं है। शारीरिक सौंदर्य प्रतियोगिताओं में महिलाओं ने खूब नाम कमाया है। आर्थिक दृष्टि से भी अकूत धन की मालकिन महिलाओं की कमी नहीं है। किन्तु, बावजूद इन सबके, महिलाएँ न शांत हैं, न सुखी। कारण, सुख-शांति प्राप्ति के मूल उपकरणों से महिलाएँ दूर निकल गई हैं–निकलती जा रही हैं। आधुनिकता और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर नारियों ने निर्लज्जता से नाता जोड़ लिया है। फलतः नारीस्वतंत्रता और आधुनिकता के नाम पर प्राय: सर्वत्र स्वच्छन्दता और अनुशासनहीनता का तांडव देखने को मिल रहा है। नारियों ने स्वतंत्रता का सही अर्थ समझा ही नहीं है। स्वतंत्रता का अर्थ तंत्र विहीन होना नहीं, बल्कि स्व तंत्र के अधीन होना है। किन्तु, 'स्व' को जाने बिना स्वतंत्र और स्वतंत्रता अबूझ पहेली है। नारी मुक्ति का अर्थ नारियों का निरर्थक रूढ़ियों परम्पराओं आडम्बरों से मुक्ति है, न कि सुसंस्कारों से भी। इस प्रसंग में डॉ० लोहिया से सम्बद्ध एक बात की चर्चा की जा सकती है। डॉ० लोहिया तेजस्वी चिन्तक से रूप में विख्यात रहे हैं। नारी-पुरुष की समानता के हिमायती भी। दिल्ली विश्वविद्यालय में इतिहास विभाग की प्राध्यापिका प्रो० रमा मित्रा उनकी मित्र थीं। सिगरेट पीती थीं। उन्होंने स्वयं एक व्यक्ति को बतलाया था कि उनका सिगरेट पीना डॉ० लोहिया की देन है। हुआ यों कि एक दिन सिगरेट पीते-पीते डॉ० लोहिया ने प्रो० रमा मित्रा की ओर एक सिगरेट पीने के लिए बढ़ा दी। प्रो० मित्रा ने न कभी सिगरेट पी थी, न इस प्रसंग में पहले कभी सोचा ही था। किन्तु, इनके इन्कार पर डॉ० लोहिया ने जो टिप्पणी की उसे प्रो० मित्रा ने चुनौती के रूप में लिया और फिर उस दिन से सिगरेट पीने लगी। डॉ० लोहिया ने कहा था। तुम अभी मुक्त नारी नहीं हो। 'यू आर नोट ए लिबरेटेड वोमेन' जाहिर है मुक्ति का सही अर्थ न डॉ० लोहिया ने समझा था और न प्रो० मित्रा ने। सच्चाई तो यह है कि उस दिन प्रो० मित्रा कुछ और गुलाम हुई थीं–सिगरेट की और डॉ० लोहिया की भी। आधुनिक नारियाँ भी डा० लोहिया और प्रो० मित्रा की गलतफहमी के शिकंजे में हैं। गुलामी की जंजीर को मुक्ति-मंत्र मान कर चलने की खुशफहमी ने उनकी आँखों का पानी उतार कर उन्हें अन्धेरी गली में भटकने की विवशता दी है। और यह सब चल रहा है–'बोल्डनेस' के नाम पर।

माँ सारदा के पास अपनी उन बेटियों के लिए लज्जाशीलता का मंत्र है। माँ आजीवन लज्जाशीला रहीं। वे अक्सर कहा करती थीं–लज्जा नारी का आभूषण है। उसे किसी भी परिस्थिति में इसका परित्याग नहीं करना चाहिए।

आज सर्वत्र भैतिकता का बोलबाला है। भौतिक सम्पन्नता के लिए आधुनिक महिलाएँ पुरुषों से अधिक लालायित हैं। शादी-विवाह में तिलक दहेज लेने की बात हो या कम दहेज की वजह से बहू को प्रताड़ित करने की, स्त्री भ्रूण हत्या का मामला हो या रिश्वत लेने का, महिलाएँ बढ़-चढ़ कर हिस्सा ले रही हैं! पति रिश्वत लेने में कभी आनाकानी भी करता है तो आधुनिकाएँ स्वयं आगे बढ़ कर लेन-देन का मामला तय कर लेती हैं। भौतिक उपलब्धियों के प्रति गहरी चाहत ने उनके लोभ और मोह को भरपूर हवा दी है। जो नहीं मिला उसे पाने के लिए उनके मन में ऐसी वेकली है कि तमाम नियम कानून और मर्यादा को तिलांजलि देने में जरा भी संकोच नहीं है। जो पा लिया है उसके प्रति इतना मोह है, इज्जत प्रतिष्ठा गँवा कर भी उसे सहेजना चाहती हैं। भौतिकता के प्रति इसी लोभ और मोह ने रिश्वत का बाजार गर्म किया है। शादी-विवाह को बेहद खर्चीला बना दिया है। फलतः बेटी पहले से भी अधिक

१. राम मनोहर लोहिया आचरण की भाषा-राम कमल राय, लोक भारती प्रकाशन १९९५ पृ० ११५

बोझ हो गई है। स्त्री-भ्रूण हत्या को भी खूब बढ़ावा मिल रहा है। हमारे धर्म-आचार शास्त्रों में चारित्रिक उत्थान के मार्ग में जिन छः शत्रुओं (काम, मद, क्रोध, मोह, मत्सर और लोभ) की चर्चा आती है, उनमें लोभ सबसे पहला और सबसे प्रभावशाली मनोविकार माना गया है। यह आसानी से मरने वाला भी नहीं है। कबीरदास जी ने कहा भी है–

माया मरी न मन मरा, मर मर जात शरीर ।
आशा तृष्णा ना मरी, कह गए दास कबीर ॥

संभवतः इसलिए ही लोभ को पापों की जड़ के रूप में हमारे ऋषियों ने स्मरण किया है! श्रीमद् भगवद् गीता में भी आत्मा का नाश करने वाले और नरक के द्वार के रूप में चिह्नित तीन तत्वों में लोभ भी एक है।[2]

इस पृष्ठभूमि में माँ सारदा का चरित्र मानो श्यामपट पर खल्ली की लिखावट है। एकदम काले पर एकदम सफेद ! माँ ने अपने आचरण से आजीवन लोभ-मोह विहीन होने की चेष्टा की। एक बार लक्ष्मी नारायण नामक एक मारवाड़ी भक्त ने ठाकुर की कमजोर आर्थिक दशा देख कर दस हजार रुपये ठाकुर के नाम पर बैंक में जमा कर देने की पेशकश की। सुन कर ठाकुर ने पहले तो उस भक्त की खूब भर्त्सना की। फिर मानो माँ सारदा के निर्लोभी मन को उजागर करने के लिए माँ को बुला कर कहा कि मैं तो रुपये ले नहीं सकता। किन्तु, तुम यदि चाहो तो ले सकती हो। माँ ने अविलम्ब उत्तर दिया था। नहीं, यह नहीं हो सकता। जैसा आपका लेना वैसा मेरा-लेना। और रुपया देने-लेने की बात वहीं समाप्त हो गई थी। इस प्रसंग में एक और घटना स्मरणीय है। ठाकुर के देहावसान के बाद की बात है। १९११ ई० के फरवरी महीने में माँ सारदा ने आठ संगी संगिनियों के साथ रामेश्वर दर्शन के उद्देश्य से यात्रा की थी। रामेश्वर द्वीप रामनाद के राजा की जमींदारी के अधीन था। राजा स्वामी विवेकानन्द के शिष्य थे। उन्होंने माँ की पूजा-अर्चना की खास व्यवस्था की थी। राजा ने अपने दीवान को आदेश दिया कि माँ को मेरा रत्नागार दिखा दिया जाय और उनमें से जो चीज माँ पसन्द करें। इन्हें सादर समर्पित की जाय। राधू भी साथ थी। माँ अपनी ओर से तो निश्चिंत थीं कि उनका मन किसी चीज पर आ ही नहीं सकता। किन्तु, बच्ची राधू को लेकर आशंकित थीं। बच्चा का मन यदि कुछ माँग बैठे तो ये लोग बिना दिये मानेंगे नहीं। रत्नागार देखने के दरमियान माँ लगातार ठाकुर को गोहराती रहीं कि राधू कुछ माँग न बैठे। हुआ भी यही। बहुत पूछने पर भी राधू ने किसी चीज के लिए कोई इच्छा नहीं जाहिर की। कहा–मुझे यह सब कुछ नहीं चाहिए। मेरी पेन्सिल खो गई है। मुझे पेन्सिल दे दो। पेन्सिल खरीद कर दे दी गई। तब पेन्सिल मात्र दो पैसे में आती थी। माँ ने ठाकुर को मन-ही-मन प्रणाम किया था। बच्ची राधू के मन में पराई चीज के लिए चाहत नहीं जगे, इसके लिए ठाकुर से प्रार्थना की थी। किन्तु, आज आधुनिकाएँ 'गिफ्ट' के नाम पर अपने बच्चों के मन के लोभ को हवा दे रही हैं। भारी गिफ्ट अच्छे सम्बन्धी की पहचान बनती जा रही है। हल्की-फुल्की गिफ्ट देने वालों का तो कोई आदर ही नहीं रहा। आधुनिक माताओं और बच्चों की निगाह में। बस, वस्तु, वस्तु और वस्तु चाहिए। जहाँ से भी हो। जैसे भी हो। आज के इस खतरनाक मोड़ पर माँ सारदा के चारित्रिक आचरण से निःसृत संदेश मानक दिशा निदेशक है। सीख मिलती है, पराई चीज के लिए चाहत नहीं जगने देने की-संतोष की।

महाभारत में एक ययाति की कथा आती है, जिसने अपने युवा पुत्र का यौवन उधार लेकर अपनी भोग-लिप्सा तुष्ट करने का प्रयास किया था। आज वैसे ययातियों की लम्बी कतार है, जो विज्ञान-पुत्र से यौवन माँग कर भोग-लिप्सा तुष्ट करना चाहते हैं। नारियाँ इस क्षेत्र में भी पुरुषों से पीछे नहीं हैं। बल्कि सच्चाई तो यह है कि अनुकूल वातावरण निर्माण में उनकी अहम भूमिका है। निश्चय ही ब्रह्मा ने अपने सृजन-कार्य में मदद के लिए मानव-मन में भोग-लिप्सा की चाहत भरी होगी। आज वे भी हतप्रभ होंगे वगैर सृजन की कामना से, मात्र दैहिक सुख के लिए, अनवरत अविराम उड़ते मानव तन धारियों को देखकर।

माँ सारदा ने भोग को कभी महिमा मंडित नहीं किया। पति ठाकुर देह-प्रेम से ऊपर उठ कर ईश्वर-प्रेम में तल्लीन होना चाहते थे। माँ ने उस चाहत की पूर्ति में भरपूर सहयोग दिया। देह-सीमा से ऊपर उठ कर पति के प्रति आत्मिक प्रेमानन्द में विभोर हो गईं। माँ घंटों ठाकुर को दूर से निहारा करती थीं। भक्तों के बीच दिये गए उनके उपदेश सुना करती थीं। देह-चेतना से परे एक गहरा आत्मिक संबंध था पति-पत्नी के बीच। ठाकुर भी माँ की सुख-सुविधा का खूब ख्याल रखा करते थे। दोनों एक दूसरे के लिए बने थे। माँ सारदा

---

१. लोभात्क्रोधः प्रभवति लोभात्कामः प्रजायते ।
लोभान्मोहश्चनाशश्च लोभः पापस्य कारणम् ॥
(हितोपदेश, मित्लाभ)

२. त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत ॥
–श्रीमद् भगवद् गीता

ठाकुर के लिए चिह्नित थीं। ठाकुर माँ सारदा के लिए निर्मित। दोनों का अवतरण लोक कल्याण के लिए हुआ था। दोनों को इस जगत की चिन्ता थी। दुःख से आकुल व्याकुल अपनी अनन्त संतान की फिक्र थी। माँ सारदा ने किसी को गृहस्थ आश्रम में प्रवेश से नहीं रोका। किन्तु, एक खास अवधि के बाद विदेह-भाव से रहने की सलाह जरूर दी। ठाकुर कहा करते थे–हम सोलह आना इसलिए करते हैं कि हमारी संतान–हमारे भक्त कम-से-कम चार आना कर सकें। उस 'चार आना' की आज बड़ी जरूरत है। अन्यथा सब कुछ भोग-लिप्सा की 'सूनामी लहरों' की भेंट चढ़ जायेगा।

इसका अर्थ यह नहीं है कि माँ सारदा ने सदैव पति की सभी बातें मान लीं या सदैव अनुगामिनी आज्ञाकारिणी बनी रहीं। जहाँ जरूरत पड़ी, ठाकुर का विरोध भी किया। किन्तु, उदात्त लक्ष्य के लिए। कभी क्रोध को स्वयं पर हावी नहीं होने दिया और न अपने किसी आचरण से ठाकुर का कभी अपमान ही किया। बस, दृढ़ता से अपनी बात रखी और उस पर अमल भी किया। एक बार ठाकुर ने एक शिष्य को अधिक भोजन करा देने को लेकर माँ से शिकायत की थी कि रात में इतनी अधिक रोटियाँ खिला दोगी तो ये ध्यान साधना क्या करेंगे! माँ ने तुरन्त उत्तर दिया था–बच्चे कितना खायेंगे यह देखना माँ का काम है। यह काम तुम मुझ पर छोड़ दो। ठाकुर निरुत्तर हो गए थे। एक बार ठाकुर ने अधिक खर्च करने के कारण माँ को टोका था तो माँ ने मौन रह कर उस प्रसंग में इस तरह अपनी असहमति दिखाई थी कि ठाकुर उन्हें प्रसन्न करने के लिए व्याकुल हो उठे थे। बात यह थी कि ठाकुर के भक्त अक्सर मिठाई आदि लेकर आते थे। माँ उसे आस-पास के बच्चों में, भक्तों में, बाँट देती थीं। इसी बीच कोई भक्त आ गया और उसे देने के लिए मिठाई आदि नहीं रही तो ठाकुर को अच्छा नहीं लगता था। इसी प्रसंग में एक-दिन ठाकुर ने माँ से कहा था कि इस तरह खर्च करने से कैसे चलेगा ? माँ को बात जँची-नहीं। वे चुपचुप उठ कर वहाँ से चली गईं। ठाकुर ने तुरन्त अपने भतीजे को यह कह कर माँ के पास भेजा था कि जा अपनी चाची को मना कर शांत कर आ। इनके नाराज होने से इसका (अपनी ओर इशारा करके) बहुत अनिष्ट हो जायेगा। इतना ख्याल रखते थे ठाकुर माँ की भावनाओं का ! वे कहा करते थे मैं किसी पर क्रोध करूँ तो उसकी रक्षा हो भी सकती है। किन्तु, यदि माँ सारदा क्रोध करे तो ब्रह्मा, विष्णु और महेश मिल कर भी उसे नहीं बचा सकते।

आज आधुनिकाओं की नजर में मातृत्व का स्थान सबसे निचले पायदान पर है। कैरियर सर्वोपरि है। फिर दैहिक सुख-सुविधा की बारी आती है। संतान तो जैसे बोझ हो आज। संतानवती नारियाँ भी 'माता जी' कहलाना पसन्द नहीं करतीं। पुत्र-संतान के लिए थोड़ी चाहत है भी तो स्त्री-संतान तो सदैव अनचाही है। उसे अपनी कोख में ही हमेशा के लिए सुला देने में बहुत-सी महिलाओं को कोई मानसिक क्लेश नहीं होता और न ही उनके मातृभाव को कोई ठेस लगती है। कहने को तो लड़की-लड़के में आज कोई अन्तर नहीं है समाज में, किन्तु, दोनों के खाने की थाली और सोने के बिस्तर में अन्तर करने से कुछ तथाकथित माताएँ बाज नहीं आतीं। दैनिक व्यवहार में तो अन्तर होता ही रहता है।

किन्तु, माँ सारदा ने मातृ-भाव को सदैव अहमियत दी थी। इनका तो अवतरण ही हुआ था जगत में मातृभाव की अवधारणा की स्थापना के लिए। वे सबकी माँ थीं। चर-अचर सबकी। चोर की भी साधु की भी। देशी की भी, विदेशी की भी। यहाँ तक कि अपने माता-पिता की भी। अपने पति ठाकुर की भी। इनके लिए सिस्टर निवेदित ने लिखा था–"प्यारी माँ, स्नेह से लबालब हो तुम। तुम्हारे स्नेह हमारे जैसा उच्छ्वास या उग्रता नहीं है, वह पृथ्वी का प्रेम नहीं, स्निग्ध शांति है जो सभी का कल्याण करती है, किसी का अमंगल नहीं करती। जिसमें स्वर्णिम आलोक भरा है, खेल भरा है। --सचमुच तुम ईश्वर की अपूर्वतम सृष्टि हो।" कली चटक कर फूल बनती है। फूल होना कली की स्वाभाविक परिणति है। स्त्री का माँ होना भी उसकी स्वाभाविक परिणति है। वह जननी बने या न बने माँ नहीं बनी तो कुंठित होकर असमय मुर्झा जायेगी। असंतुलित हो जायेगी। माँ सारदा में जो गजब का संतुलन था वह इनेक मातृभाव के चरम विकास का फल था। अक्रोध, अदोषदर्शिता, निरहंकारिता और सरलता-सहजता के मूल में भी यही मातृभाव था। जो पूर्ण माँ है वह किस पर करे क्रोध ? किसका दोष देखे ? कैसे अहंकार करे ? कैसे न हो सरल-सहज ? मत्सर (द्वेष) करे तो किससे ?

इसी मातृभाव ने माँ सारदा के मन को इतना विस्तार दिया था कि इस भाव को आजीवन जी कर अन्ततः यह कह सकीं–कोई पराया नहीं है। सब अपने हैं। यदि शांति चाहती हो तो सबको अपना बनाना सीखो। अपनी पगली भाभी की अर्द्ध पगली बेटी राधू को अपनी सगी बेटी की तरह पाल-पोस कर माँ ने अपने आचरण से स्त्री-संतान के प्रति सहृदय ममतामयी होने का अद्भुत संदेश दिया है। मातृभाव इनके लिए सदैव अधिकार रहा है। कर्त्तव्य कभी नहीं। इसीलिए माँ को इससे कभी ऊब नहीं हुई और न ही यह कभी बोझ बना माँ पर।

वक्त आ गया है माँ सारदा के आचरण जनित संदेशों को आत्मसात करने का। अमल करने का। श्री माँ के देहत्याग के बाद मिस मैक्लाउड ने कहा था– "उस निर्भीक, शान्त, तेजस्वी जीवन का दीप बुझ गया– आधुनिक हिन्दू नारी के लिए छोड़ गया आगामी तीन हजार वर्षों में नारी को जिस महिमामय अवस्था में विकसित होना है, उसका आदर्श।" स्वामी विवेकानन्द की भविष्यवाणी भी है कि माँ सारदा का आधार लेकर भारत में फिर गार्गी, मैत्रेयी, लोपामुद्रा जैसी नारियाँ अवतरित होंगी। इन नारियों के बिना भारत अपनी प्राचीन गरिमा नहीं पा सकता। ये नारियाँ आधारशिला हैं भारतीय जीवन मूल्यों की। विश्व शांति मूल्यों की भी। दैहिक मूल्यों को बहुत दिनों तक नहीं भुनाया जा सकता। आर्थिक मूल्यों पर भी बहुत दूर तक सवारी नहीं की जा सकती। माना कि उपनिषदों में देह को मंदिर कहा गया है और लक्ष्मी आदि देवी के रूप में अभ्यर्थित हैं। किन्तु, देह मंदिर है आत्मा रूपी देवता के लिए। देह माध्यम है आत्मा रूपी देवता के आदेशानुसार आचरण करने का। लक्ष्मी पालनकारी परोपकारी विष्णु की सहधर्मिणी होकर ही पूजनीया हैं। जाहिर है, अन्ततः हमें लौटना ही है आत्मिक आध्यात्मिक मूल्यों की ओर। इधर योग के प्रति झुकाव के माध्यम से तैयारी शुरू हो गई है। माँ सारदा सार देने वाली के रूप में दिखने भी लगी है बहुत लोगों को। विश्वास है, अब तैयार जमीन पर माँ सारदा के संदेशों के बीज फूल बनकर खिलेंगे और वैश्वीकरण की प्रक्रिया में भारत के साथ-साथ पूरा विश्व सुवासित हो उठेगा। ❑

<u>प्रेरक प्रसंग</u>

मनुष्यता

पांडिचेरी के अरविन्द आश्रम की माताजी के पास एक फ्रांसीसी युवक पहुँचा। वह युवक बहुत ही जोशीला था और लड़ने-मरने के लिए सदा ही तैयार रहता था। यों देखने में वह था भी बड़ा तगड़ा। माताजी, जो कि उससे स्वभाव से परिचित थीं, बोलीं–'यह बताओ कि मुक्के के बदले मुक्का मारना कठिन काम है या मुक्के के बदले अपना हाथ अपनी जेब में डाल लेना कठिन काम है ?' उस युवक ने कुछ सोचा फिर बोला–मुक्के के बदले मुक्के तो तुरन्त मारा जा सकता है, यह तो आसान काम हुआ। मुक्के के बदले हाथ जेब में डाल लेना, निश्चय ही कठिन काम है।

–'शाबास, अच्छा अब यह बताओ कि तुम जैसे नौजवान और तगड़े युवक को आसान काम करना चाहिए या कठिन काम ?' युवक फिर सोचने लगा और बोला–अवश्य ही कठिन काम करने चाहिए।

–यह भी ठीक है, अब यह बताओ कि आज के बाद तुम कौन-सा काम करना पसन्द करोगे ? मुक्के का जवाब मुक्के से दोगे या बदले में हाथ जेब में डाल लोगे ? –मुस्कुरा कर माताजी ने पूछा।

युवक माताजी के तर्कजाल में आ चुका था, लेकिन वहाँ उसे सत्य के प्रकाश का दर्शन हुआ। वह बोला– अब हाथ मेरी जेब रहेंगे। मैं नौजवान हूँ, और कठिन काम ही करूँगा। यह कहकर तथा माताजी को प्रणाम करके वह नौजवान वहाँ से चला गया।

अगले दिन वह खुशी से नाचता हुआ माताजी के पास आया और बोला–आज एक व्यक्ति क्रोध में आकर गाली दे बैठा। पर मेरा डीलडौल देखकर घबराकर आत्मरक्षा के लिए लड़ने को तैयार हो गया, लेकिन मैंने अपने हाथ जेब में डाल लिए, फिर वह मेरे पास आया और मैंने हाथ निकाल लिया।

–फिर क्या किया तुमने ? चौंक कर माताजी ने पूछा।

–फिर मैंने उसका हाथ अपने हाथ में लिया और हाथ मिला लिया।

नौजवान का उत्तर सुनकर माताजी प्रसन्न हुईं। उन्होंने उसकी कमर थपथपाते हुए कहा–तुम सच्चे नौजवान हो। क्रोध को पी लेना ही मनुष्यता है।

❑

अखंडता के अग्रदूत गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज

–अनिल कुमार, पटना सिटी

(साहिब श्री गुरु गोविन्द सिंह जी का 338 वाँ प्रकाशोत्सव)

१५ जनवरी, २००५ गुरू गोविन्द सिंह जयन्ती (प्रकाशोत्सव) है। राष्ट्र की एकता, अखंडता और भावनात्मक एकता कायम रखने के लिए सिखधर्म के गुरुओं ने एक ऐसा मानवीय समाज बनाने की परिकल्पना की थी, जहाँ किसी प्रकार का भेदभाव न हो, छुआछूत न हो, वर्गहीन समाज हो, सारा संसार प्यार, एकता एवं विश्व बन्धुत्व की डोर से बंधा हो। इसलिए संत सिपाही और साहित्यकार गुरूगोविन्द सिंह जी ने डंके की चोट कहा-मानस की जात सभै एकै पहचानवो।

सही बात तो यह है कि आज भी सिख धर्म में अरदास (प्रार्थना) की जो परम्परा है, उसके अंत में कहा जाता है नानक नाम चद्दी कला तरे भाणेसरबत का भला। यही कारण है कि उन धर्म गुरुओं ने अपने जीवन, अपने संकल्प, अपने आदर्श एवं कार्यों के द्वारा ऐसे समाज के लिए शाश्वत प्रयास किए जिनमें कहा गया-ना कोई हिन्दू ना मुसलमान, ना कोई वैरी नाहि वेगाना, एक पिता एकस हम वारिक, मानस की जात सवै एकै पहचानवो, एक ही स्वरूप सवै एक ही वनाउं है, एक ही सरूप सवै एकै जोत जानवो, आदि।

इसीलिए शहीद शिरोमणि गुरु अर्जुनदेव जी द्वारा सम्पादित श्री गुरु ग्रंथ साहिव आज भी संसार में सांझीवालता का प्रतीक है। दुनिया के किसी भी धर्म एवं भाषा में इस तरह की भावात्मक एकता का प्रतीक ग्रंथ काई नहीं है और इसी ग्रंथ को श्री गुरु गोविन्द सिंह ने श्री हुजूर साहिव (नान्देड महाराष्ट्र) में १७०८ ई० में गुरु गद्दी प्रदान कर धर्म निरपेक्षता का उदाहरण विश्व में प्रस्तुत किया। सच्चाई तो यह है कि गुरु गोविन्द सिंह जी केवल सिख धर्म के गुरु ही नहीं वरन विश्व के महान लोकनायक और युग प्रवर्तक महापुरुष के रूप में याद किए जाते है। उनका व्यक्तित्व असाधारण और बहुमुखी था। वे लोकप्रिय धार्मिक गुरू और प्रगतिशील समाज सुधारक थे, चतुर राजनीतिज्ञ थे और सच्चे देशभक्त भी, कुशल सेनानी थे और निर्भीक योद्धा भी, दार्शनिक विद्वान भी थे और ओजस्वी महाकवि भी। राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक क्षेत्रों में किसी एक-दो को चुनकर प्रयत्न करने वाले महापुरुष समय-समय पर अनेक हुए है, परन्तु सभी क्षेत्रों में, समान रूप से प्रगति का बीड़ा उठाने वाले श्री गुरु गोविन्द सिंह जैसे महापुरुष विश्व इतिहास में दुर्लभ हैं। मुगल साम्राज्य की अतुल सैन्य शक्ति और दमनचक्र की विभीषिका ने साधारण लोगों तथा हिन्दू राजाओं को निर्बल बना दिया था। जाति-पाति का राग समाज की शक्ति को घुन की तरह खाता जा रहा था।

ऐसी विषम परिस्थिति में श्री गुरु गोविन्द सिंह जी ने अकेले ही युग की चुनौती स्वीकार की और, अपने असीम साहस, दृढ़ संकल्प और आश्चर्यजनक प्रतिभा से समय की प्रवल धारा को मोड़ दिया। इसमें संदेह नहीं कि खालसा के रूप में श्री गुरु गोविन्द सिंह जी ने जिस अद्‌भुत शक्ति का सफल नेतृत्व किया, उसका बीजारोपण श्री गुरू नानक देव जी के काल में ही हो चुका था।

उनमें अकारण युद्ध से प्रेम नहीं था। उनका चरम लक्ष्य युद्ध का अंत था। इसलिए उन्होंने खालसा-पंथ बनाते संगत में कहा-युद्ध करीह सब शांत। अर्थात युद्ध क्षेत्र में मुझे लाचार हो जाना पड़ा है। मैं आक्रमणकारियों के विरुद्ध शस्त्रों का प्रयोग करने को वाध्य हो गया हूँ क्योंकि जब सभी अन्य शांति के उपाय समाप्त हो जाएँ तब हाथ में तलवार उठा लेना न्यायसंगत है। 'चूंकार अज हमाहीलतेदर-गुजश्त हलाल अस्त बुर्दन बशमशीर दस्त।' श्री गुरू गोविन्द सिंह जी के सामने सिद्धांत और आदर्श की लड़ाई थी। उन्होंने घर और परिवार छोड़ भूखे-प्यासे, थके-हारे, कंटकाकीर्ण पथ पर चलना स्वीकार किया। धर्म की बलिवेदी पर अपने पिता ही नहीं वरन् अपने चारों पुत्रों, अनेक शिष्यों एवं अपने प्राणों तक की पूर्ण आहुति दे दी। तभी उन्होंने खड्ग को नमस्कार किया और धर्म युद्ध में जूझ मरने का वरदान आदिशक्ति देवी से मांगा-देहि शिवा वर मोहि इहै, शुभ करमन ते कवहूं न टरौं, जब आवकी औघ निधान बनै, अति ही रण में तब जूझ मरौं। इतना ही नहीं, वे पूर्ववर्त्ती गुरुजनों की भांति सम्पूर्ण मानव जाति को एकता के सूत्र में बंधा देखना चाहते थे। उन्होंने मानव और मानव के बीच कोई भेद, उसकी जाति, धर्म, रंग या परिवेश के कारण स्वीकार नहीं किया।

❑

आध्यात्मिकता के सात प्रश्न

–डॉ० निवेदिता बक्शी, कुर्ला (पं०) मुम्बई

इस कलियुग में मानव आत्मतत्व से दूर होता जा रहा है। आज हम बिना आधुनिक उपकरण के संसार में दो मिनट भी नहीं रह सकते हैं। मोबाइल फोन या टेलिविजन के सिवा हम दो मिनट भी नहीं रह सकते। हमारी पीढ़ी को नहीं सिखाया जाता है अंर्तमुखी होना, नहीं सिखाया जाता है शांत होकर ध्यान करना। कहाँ गया वह गुरुकुल, कहाँ गये वो गुरु जिनके पास बैठकर मन शांत हो जाता था, कहाँ गये वे आदर्श ? आजकल की युवा पीढ़ी को आदर्शों की आवश्यकता नहीं है। आदर्श पुरुष मानव के बारे में हम भूलते जा रहे हैं। भारतीय संस्कृति जैसे बिखर रही है। इस समय जो मुठ्ठी भर लोग अपने आपको धार्मिक मानते हैं क्या वे अपने कर्त्तव्य को पूरा कर रहे हैं ?

हमारे पास समय कम है और शास्त्र अनेक हैं। शास्त्र गहरे समुद्र की तरह है। हमें लक्ष्य तक पहुँचना है। बुद्धि हमारी सीमित है। बुद्धि भी इतनी सूक्ष्म नहीं है कि हम तत्व की धारणा कर सकें। अतः हमारा यह कर्तव्य है कि हम एक ही शास्त्र का अच्छी तरह से अध्ययन करें और युवा पीढ़ी तक उसका सारतत्व पहुँचाएँ। इस युग में 'भगवत् गीता' और 'कथामृत' के समान ग्रंथ ही हमें भवसागर पार करने में मदद कर सकते हैं।

भगवत् गीता सब वेदों और उपनिषदों का सार है। अगर हम सिर्फ इसी ग्रन्थ का श्रवण-मनन और निदिध्यासन करें तो आध्यात्मिकता की सीढ़ी पर हम जल्दी ही चढ़ सकते हैं। अर्जुन हमारे प्रतिनिधि हैं। वे भगवान श्री कृष्ण से प्रश्न पूछते हैं और श्रीकृष्ण उनके संदेह को दूर करते हैं।

भगवत् गीता के आठवें अध्याय 'अक्षर ब्रह्मयोग' में अर्जुन भगवान श्रीकृष्ण से सात प्रश्न पूछते हैं। ये आध्यात्मिकता के गूढ़ प्रश्न है।

१. ब्रह्म क्या है ?
२. अध्यात्म क्या है ?
३. कर्म क्या है ?
४. अधिभूत क्या है ?
५. अधिदैव क्या है ?
६. अधियज्ञ कौन है ?
७. मृत्यु के समय ज्ञानी आपको किस प्रकार से जान सकते हैं ?

अब हम वासुदेव के द्वारा दिये गये उत्तरों पर विचार करें। और उसके अनुसार अपनी साधना करें तो हमें निश्चय ही लाभ होगा।

१. ब्रह्म क्या है ? जो कभी 'क्षर' नहीं होता है, जिसका नाश नहीं होता है, वही अक्षर ब्रह्म है। ठाकुर श्री रामकृष्ण नित्य और अनित्य पर बार-बार विचार करने को कहते हैं। हम देखेंगे कि जितनी भी वस्तुओं एवं व्यक्तियों से हम आनन्द का उपभोग करना चाहते है वे सब नाश्वान हैं और इस कारण थोड़े समय के उपरान्त उन वस्तुओं या व्यक्तियों से हमारा ध्यान हट जाता है। हमारे लिये वही वस्तु पुरानी हो जाती है। तो क्षर न होने वाली कौन-सी वस्तु है। वह है ब्रह्म। वह सत् चित आनंद है। वही हमारा स्वरूप है। हमारा स्वरूप आनन्द दायक है। इसी कारण हम सुख या आनंद के पीछे दौड़ते रहते हैं। ब्रह्म या आत्मा हमारा स्वरूप है। यह हमारे इतने निकट है फिर भी हम बाहर की दुनिया में ही उस आनंद को ढूँढ़ते रहते हैं। ब्रह्म को हम इंद्रियों के द्वारा नहीं जान सकते। साधना–मन को अन्तर्मुखी करना है। किसी तरह दिन में कम से कम थोड़ा समय निकालकर मन के अंदर झाँक कर देखें। शांत होकर बैठें। थोड़ा भगवद् चिन्तन करें।

२. अध्यात्म क्या है ? ब्रह्म परमात्मा है। हर देह में इस ब्रह्म के अवस्थान को ही अध्यात्म कहते हैं, जो कि हमारा स्वभाव है। हम जैसे हर व्यक्ति में परमात्मा बैठा हुआ है। सिर्फ अज्ञान के कारण हम उसे देख नहीं पाते हैं। चैतन्यता प्रकृति के कोने-कोने में ओत प्रोत भाव से भरी हुई है।

साधना–जो भी जीव, पशु-पक्षी हम देखते हैं उसमें परमात्मा को ही देखें। यही अध्यात्म की साधना है। वही चैतन्यता हर जीव में अभिव्यक्त हो रही है। सब में परमात्मा का दर्शन करना है। माँ सारदा के जीवन से हम देखें और सीखें। किसी का दोष नहीं देखें। जगत में अपने 'जीव भाव' अर्थात् 'अहंकार' अर्थात् कच्चा मैं को कम करें और निन्दास्तुति से प्रभावित नहीं होवें। जितना जगत में ईश्वर दर्शन करेंगे उतना ही मन में विक्षेप होना कम हो जायेगा। मन का संतुलन बढ़ता जायगा। जगत को प्रेम से जीतें। जगत को अपना मान कर चलो। कोई भी पराया नहीं है। इसी में शांति है। माँ सारदा के इसी उपदेश में सारतत्व छिपा हुआ है।

३. कर्म क्या है ? इस संसार में कर्म के बिना कोई भी दो मिनट नहीं रह सकता है। हम २४ घंटे कर्म में लगे हुए हैं। जो कर्म ईश्वर को समर्पण किया जाता है वह यज्ञ की तरह है जो कर्म निस्वार्थ भाव से किसी के लिये किया जाता है या किसी के लिये त्याग किया जाता है, वही कर्म-कर्म

योग बन जाता है और हमें ईश्वर से जोड़ देता है। संसार में रहकर भी ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है। हर छोटे से छोटे या बड़े से बड़े कर्म को निःस्वार्थ भाव से करें तो वही हमें ईश्वर तक जोड़ने में सहायता करता है।

४. अधिभूत क्या है ? यह देह पंचभूतों से बना है। यह विनाशशील है। वही अधिभूत हैं।

क्षरो विनश्वरो भावो देहादिपदार्थ : भूतं प्राणिमात्रम् अधिकृत्य भवति। –श्रीधर शास्त्री

जो देह नाशवान प्राणी पर अधिकार करके बैठी है वही अधिभूत है। देह विनाशशील है। फिर भी हम समझते हैं कि हम यह स्थूल देह हैं। आध्यामिकता वह है जिसके सहारे हम देहभाव से ऊपर उठ सकते हैं। ठाकुर उसी को 'पक्का मैं' कहते थे। मैं मंत्री हूँ, मैं धनवान हूँ, मैं सुन्दर हूँ, मैं अच्छी गायिका हूँ यह 'कच्चा मैं' है। और 'पक्का मैं' मैं भगवान का दास हूँ अर्थात अहंकार का त्याग अर्थात जीवभाव का त्याग करना है।

५. अधिदेवता–सृष्टि के प्रारंभ में परमात्मा की अव्यक्त शक्ति को हिरण्यगर्भ कहते हैं। वे ही केवल विद्यमान थे।

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् स दाधार पृथ्वीवीं दयाभूतेयां कस्मै देवाय हविषा विधेम

ऋग्वेद १०/१२१/१

वे ही सर्वभूत के अधीश्वर हैं। उन्होंने ही आकाश और पृथ्वी की स्थापना की है। हम उनकी आराधना करते हैं। हिरण्यगर्भ जीवों का उत्पत्तिस्थल है। संसार का हर भूत हिरण्यगर्भ के द्वारा परिचालित होता है।

साधना–सबके सुख-दुख को समझना व महसूस करना।

६. अधियज्ञ कौन है ? भगवान कहते हैं, मैं ही हर देह में उपस्थित अधियज्ञ हूँ।

साधना–इसका हमें विचार करना कि हम कौन हैं अधियज्ञ कौन है और नित्य प्रतिदिन स्मरण मनन करना।

७. ज्ञानी किस तरह आपको मृत्यु के समय स्मरण रखते हैं ? मृत्यु के समय हम जो भी विचार करते हैं उसी भाव में दूसरा जन्म होता है। अगर ज्ञानी मृत्युकाल में ईश्वर का चिंतन करता है तो वह ईश्वर में ही समा जाता है। अर्थात् मोक्ष को प्राप्त होता है। यह किस तरह जीवन में संभव है ? जो कार्य बिना प्रयत्न के होता रहता है वही अंत तक बना रहता है। यह अभ्यास और वैराग्य से होता है। हर साँस से ईश्वर का नाम लेना जब हमारा स्वभाव हो जाता है तो ही हम मृत्यु के समय उस भाव को ला सकते हैं। अगर हमें शांति चाहिये तो मन में ईश्वर का विचार करें। अगर अशांति चाहिये तो जगत के संबंध में विचार करें। हमारा स्वरूप ही शांतिमय और आनन्ददायक है। इस कारण हमें ईश्वर के ध्यान से ही शांति और आनंद की प्राप्ति होगी।

ये सात प्रश्न ही अध्यात्म के आधार हैं, वेद उपनिषद के आधार हैं। अगर हम आपने जीवन में इन सात प्रश्नों को भली-भाँति समझ लें तो अपने लक्ष्य तक पहुँचने में हम समर्थ हो सकेंगे। यही आध्यात्मिक जीवन का रहस्य है।

❑

गीता का गोता

जो लोग सुधी हैं, जो गोता लगाते हैं, वे गीता से अमृत प्राप्त करते हैं, वे देखते हैं कि गीता में जो कुछ कहा गया है, वह जीव को लक्ष्य करके कहा गया है। गीता में जीवन के परम पुरुषार्थ को पाने के जो उपाय बताये गये हैं, वे मनुष्य की प्रकृति के कारण, उसके स्वभाव के कारण भिन्न-भिन्न हो जाते हैं। हर मनुष्य में तीन प्रकार की शक्तियाँ होती हैं। एक है विचार की शक्ति, दूसरी है भावना की और तीसरी है क्रिया की। ......जिसमें विचार शक्ति प्रधान है, वह ज्ञान का पथ चुनता है जिसमें भावना शक्ति की प्रधानता है, वह प्यार का रास्ता अपनाता है और जिसमें क्रियाशक्ति का बाहुल्य है, उसे कर्म की राह पसन्द आती है। जय हम इन तीनों शक्तियों को ईश्वराभिमुखी कर देते हैं, तो पहला व्यक्ति ज्ञानयोगी हो जाता है, दूसरा भक्तियोगी और तीसरा कर्मयोगी। गीता में इन सभी व्यक्तियों के लिए पाथेय है।

–स्वामी आत्मानन्द

(गीता तत्व चिन्तन, भाग-१, पृष्ठ ४९)

रामकृष्ण मिशन ने लोक मंगल योजनाओं पर १२७ करोड़ व्यय किए

बेलुड़ (हावड़ा) : शिव भाव से जीव सेवा के महामंत्र से अभिप्रेरित एवं आत्मनोमोक्षार्थ : जगद्धिताय च के आदर्श से संचालित रामकृष्ण मिशन ने २००३- २००४ वर्ष के दौरान शिक्षा, स्वास्थ्य, राहत व पुनर्वास, लोककल्याण आदि क्षेत्रों से जुड़े सेवा कार्यों में १२७ करोड़ ५८ लाख रुपये व्यय कर अपनी लोकमंगल योजनाओं को क्रियान्वित किया। यह जानकारी १९ दिसम्बर को यहाँ बेलूड़ मठ में सम्पन्न मिशन की ९५वीं वार्षिक सामान्य सभा की बैठक में दी गयी।

मिशन द्वारा रूग्ण मानव समुदाय के लिए सेवाकार्यों से जुड़ी महत्वपूर्ण घटनाओं में विशेष रूप से उल्लेखनीय है वृन्दावन स्थित सेवाश्रम में चक्षुविभाग तथा बांकुड़ा सेवाश्रम की डिस्पेंसरी में पैथोलॉजिकल जांच केन्द्र का उद्घाटन, लखनऊ सेवाश्रम स्थित विवेकानन्द पॉलिक्लिनिक में तंत्रिका-विज्ञान इकाई, १२ शैय्या वाली गहन चिकित्सा इकाई, ८ शैय्या वाली डायलिसिस इकाई का प्रारंभ तथा उत्तरांचल में कनखल स्थित सेवाश्रम में पैथोलॉजिकल जांच केन्द्र में उपयोग में आनेवाले कई परीक्षण यंत्रों का उद्घाटन। साथ ही इटानगर स्थित अस्पताल में पूर्णावयव सीटी स्कैनर, दो विशिष्ट केबिन तथा कलर डापलर मशीन सेवार्पित किये गये।

सामान्य सभा की बैठक में मिशन के महासचिव श्रीमत् स्वामी स्मरणानन्दजी ने वार्षिक प्रतिवेदन प्रस्तुत करते हुए बताया कि १० अस्पतालों एवं भ्रमणशील चिकित्सा इकाइयों सहित १२७ चिकित्सा केन्द्रों द्वारा करीब ६२.६१ लाख रोगियों को चिकित्सा सेवा प्रदान की गई, जिसके तहत २६. ८१ करोड़ रुपये खर्च हुए।

बताया गया कि रामकृष्ण मिशन द्वारा संचालित शिक्षण संस्थानों में बाल विहार से लेकर स्नातकोत्तर स्तर तक १. ८२ लाख विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान की गयी जिनमें ७० हजार से भी अधिक छात्राएँ थीं। शिक्षा कार्य के लिए ८४.५२ करोड़ रुपये खर्च किए गए।

शैक्षणिक क्षेत्र में भारतीय राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद् (विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की एक स्वतंत्र संस्था) ने मिशन द्वारा संचालित नरेन्द्रपुर महाविद्यालय को 5 वर्षों के लिए 'ए' श्रेणी (प्राप्तांक 85-90%) घोषित किया है। राष्ट्रीय विज्ञान ओलिम्पियाड संस्था, नई दिल्ली ने झारखण्ड स्थित देवघर विद्यापीठ को सर्वश्रेष्ठ विद्यालय पुरस्कार से सम्मानित किया है। सामुदायिक विकास कार्य में अरूणाचल प्रदेश स्थित मिशन के इटानगर केन्द्र को विशेष अवदान की स्वीकृति के रूप में पोपम पारे जिला प्रशासन ने केन्द्र को वारियर एलवीन वार्षिक पुरस्कार के प्रथम प्राप्तकर्ता के रूप में चयन किया है। पश्चिम बंगाल स्थित सारदापीठ केन्द्र के शिल्पायतन ने राष्ट्रीय शैक्षणिक शोध एवं प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) से पश्चिम बंगाल सर्वश्रेष्ठ विद्यालय-उद्योग संयोजन पुरस्कार २००३ प्राप्त किया। रामकृष्ण मठ की गतिविधियों में पश्चिम बंगाल के कूच बिहार में नये-नये शाखा केन्द्र का खोला जाना, कर्नाटक राज्य के दूर-दराज गाँवों में व्यक्तित्व विकास, नैतिक शिक्षा आदि कार्यक्रमों के परिचालन हेतु मैसूर आश्रम द्वारा ज्ञान वाहिनी योजना का शुभारंभ तथा मैसूर विद्यालय में उच्च शिक्षा विभाग के लिए स्वर्ण- जयंती भवन उद्घाटन विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस वर्ष के दौरान करीब २. ६६ करोड़ रुपये खर्च कर मिशन ने देश के विभिन्न भागों में बृहत पैमाने पर राहत तथा पुनर्वास के कार्य किये जिससे ७५९ गाँवों के ६५ हजार परिवारों के लगभग २.५५ लाख लोग लाभान्वित हुए। निर्धन छात्रों को छात्रवृत्ति तथा वृद्ध, बीमार एवं असहाय लोगों को आर्थिक सहायता आदि कल्याण कार्यों में १.९८ करोड़ रुपये व्यय हुए। ११.६१ करोड़ रुपये की लागत पर कई ग्रामीण एवं आदिवासी विकास-योजनाओं का भी कार्यान्वयन किया गया।

विवेकानन्द शोध संस्थान को मानद विश्वविद्यालय का दर्जा

नयी दिल्ली : भारत सरकार ने रामकृष्ण मिशन की परिचालना में विवेकानन्द शैक्षिक एवं शोध संस्थान को मानद विश्वविद्यालय का दर्जा देने की घोषणा की है। इस सम्बन्ध में ५ जनवरी को मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा अधिसूचना जारी कर दी गयी। राँची स्थित रामकृष्ण मिशन आश्रम द्वारा संचालित दिव्यायन भी कृषि एवं ग्रामीण विकास के विभिन्न पाठ्यक्रमों की शिक्षण एवं शोध व्यवस्था के साथ उक्त मानद विश्वविद्यालय का अंग बन जाएगा। रामकृष्ण मिशन के कोयम्बटूर स्थित केन्द्र मूल्य बोध शिक्षा के विभिन्न स्तरीय पाठ्यक्रमों की शिक्षण एवं शोध व्यवस्था के साथ मानद विश्वविद्यालय की अंगीभूत इकाइयाँ बनेंगे। उपर्युक्त पाठ्यक्रमों के अतिरिक्त नवघोषित मानद विश्वविद्यालय की ओर से आपदा प्रबन्धन, बायोटेक्नोलॉजी, बायोइन्फोर्मेटिक्स, माइक्रो बायोलॉजी आदि के शिक्षण एवं शोध की व्यवस्था किए जाने का प्रस्ताव है।

बेलुड़ मठ में माँ सारदा सार्द्धशत जन्मवार्षिकी समापन समारोह

कलकत्ता : श्री माँ सारदा सार्द्धशत जन्मोत्सव का त्रिदिवसीय समापन समारोह बेलूड़ मठ में ६ जनवरी को सम्पन्न हुआ। इससे पूर्व ३ जनवरी को श्री माँ सारदा देवी का तिथि पूजनोत्सव सम्पन्न हुआ जिसमें मठ प्रांगण में भक्तजनों का सैलाब उमड़ आया।

सार्द्ध शतजन्मवार्षिकी समापन समारोह का उद्घाटन ४ जनवरी को रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के अध्यक्ष परमपूज्य श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज के आशीर्वचन से हुआ। देश के कोने-कोने से आये भक्तों-श्रद्धालुओं की भारी उपस्थिति के बीच रामकृष्ण संघ के

उपाध्यक्ष पूज्य श्रीमत् स्वामी गहनानन्दजी महराज ने अपने उद्घाटन सम्बोधन में वर्तमान समय में श्री माँ की प्रासंगिता बतायी।

उद्घाटन सत्र के बाद संघ के उपाध्यक्ष पूज्य श्रीमत् स्वामी आत्मस्थानन्द जी महाराज की अध्यक्षता में द्वितीय सत्र तथा अद्वैत आश्रम, मायावती के अध्यक्ष श्रीमत् स्वामी मुमुक्षानन्दजी महाराज के सभापतित्व में तृतीय सत्र सम्पन्न हुआ। द्वितीय सत्र में स्वामी प्रभानन्द, डॉ० केदारनाथ लाभ और श्री शंकरी प्रसाद बसु ने क्रमशः अंग्रेजी, हिन्दी और बंगला में प्रभावशाली व्याख्यान दिये। ५ जनवरी को रामकृष्ण मिशन आश्रम नरेन्द्रपुर के सचिव श्रीमत् स्वामी असक्तानन्दजी महाराज की अध्यक्षता में चतुर्थ सत्र एवं संघ उपाध्यक्ष पूज्य श्रीमत् स्वामी गीतानन्द जी महाराज की अध्यक्षता में पंचम सत्र सम्पन्न हुआ। ६ जनवरी को श्री सारदा मठ एवं रामकृष्ण सारदा मिशन की महासचिव माता प्रव्राजिका अमलाप्राणा की अध्यक्षता में छठा सत्र, रामकृष्ण मिशन, नयी दिल्ली के सचिव श्रीमत् स्वामी गोकुलानन्दजी महाराज की अध्यक्षता में सप्तम सत्र तथा संघ महासचिव श्रीमत् स्वामी स्मरणानन्दजी महाराज की अध्यक्षता में समापन सत्र सम्पन्न हुआ।

विभिन्न सत्रों में आगत भक्तों एवं श्रद्धालुओं को वरिष्ठ संन्यासियों के प्रवचन, कलकत्ता एवं देश के विभिन्न भागों से आये विद्वत्जनों के विद्वत्तापूर्ण भाषण सुनने का अवसर मिला। इसके अतिरिक्त सांस्कृतिक कार्यक्रमों के आनन्द का भी सुयोग भक्तों-श्रद्धालुओं को उपलब्ध हुआ।

प्रत्येक दिन लाख की संख्या में पहुँचे भक्तों- श्रद्धालुओं ने दोपहर प्रसाद ग्रहण किया। सारे आयोजन इतने सुन्दर, सुव्यवस्थित, सुचारू रूप से सम्पन्न हुए कि सभी की जुवान से यही उद्गार निकला-इससे ज्यादा अच्छा हो ही नहीं सकता।

रामकृष्ण मिशन द्वारा सुनामी राहत कार्य

रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के विभिन्न शाखा केन्द्रों के माध्यम से सुनामी लहर विभीषिका से तबाह हो गए लोगों के बीच अबतक लगभग एक करोड़ रुपए मूल्य की राहत सामग्रियाँ वितरित की गयी हैं। अंडमान, तामिलनाडु एवं श्रीलंका में हजारों पीड़ितों के बीच पका हुआ भोजन, शुल्क खाद्य पदार्थ, वस्त्र, चटाई आदि का वितरण किया गया तथा चिकित्सा सहायता एवं अस्थायी आवास उपलब्ध कराये गये। रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन, बेलुड़ मठ, हावड़ा के महासचिव श्रीमत् स्वामी स्मरणानन्दजी महाराज ने एक प्रेस विज्ञप्ति के माध्यम से जानकारी दी कि रामकृष्ण मिशन को दी गयी दान राशि आयकर से मुक्त है। दान राशि बेलुड़ मठ, जिला, हावड़ा, पश्चिम बंगला-७११२०२, रामकृष्ण मठ, मैलापुर, चेन्नई-६००००४ तथा रामकृष्ण मिशन आश्रम, छपरा, बिहार-८४१३०९ के पते पर भेजी जा सकती है।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, छपरा में विभिन्न कार्यक्रम

श्री माँ सारदा जयन्ती

छपरा : श्री माँ सारदा देवी को १५२वीं जयन्ती स्थानीय रामकृष्ण मिशन आश्रम में बड़े उल्लास एवं श्रद्धा-भक्ति पूर्वक मनायी गयी। पूजा-अर्चना, वेद पाठ हवन आदि के साथ श्री माँ के जीवन और संदेश पर जयप्रकाश विश्वविद्यालय की हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ० उषा वर्मा ने परम प्रेरक एवं हृदयग्राही व्याख्यान दिया। प्रायः सात सौ नर-नारी भक्तों ने बेहतर प्रसाद ग्रहण किया। इस अवसर पर १५० दरिद्र नारायणों के बीच आश्रम के सचिव स्वामी मुनीश्वरानन्द जी के द्वारा कम्बल-वितरण किया गया जिससे गरीबों को बड़ी राहत मिली।

राष्ट्रीय युवा-दिवस

१२ जनवरी को रामकृष्ण मिशन आश्रम, छपरा में स्वामी विवेकानन्द की जन्म जयन्ती के अवसर पर विशाल जुलूस निकाला गया जिसमें स्थानीय स्कूल कॉलेजों के सहस्राधिक छात्र-छात्राओं ने भाग लिया। बैंड बाजे बजाते, नारे लगाते युवकों का जुलूस शहर के लिए आकर्षण का केन्द्र था। एक ट्रक पर स्वामीजी का विशाल चित्र सुसज्जित था। आगे-आगे मंगल सूचक एवं यौवन, शक्ति एवं शान्ति के प्रतीक दो हाथी झूमते हुए चल रहे थे। सभी युवकों को 'सबके स्वामीजी' नामक एक-एक पुस्तक निःशुल्क प्रदान की गयी।

शाम को आयोजित जन सभा की अध्यक्षता सारण प्रमंडल के आयुक्त श्री गोपाल प्रसाद ने की। डॉ० केदारनाथ लाभ मुख्य वक्ता थे। मंच पर आश्रम के सचिव स्वामी मुनीश्वरानन्द जी तथा उपाध्यक्ष डॉ० नागेश्वर प्रसाद मिश्र उपस्थित थे।

राहत कार्य : कम्बल एवं वस्त्र वितरण

२८ जनवरी को मधुबनी जिलान्तर्गत फूलपरास गाँव में बाढ़ से पीड़ित लोगों के बीच प्रदत्त एक हजार कम्बल और साड़ियों का वितरण रामकृष्ण मिशन आश्रम, छपरा के द्वारा किया गया। नदी-नालों के बीच जा-जाकर स्वामी मुनीश्वरानन्द एवं स्वयं सेवकों ने यह दुस्सह कार्य सम्पन्न किया। श्री मधुकर लाल कर्ण, श्री बब्बन सिंह, श्री ललन प्रसाद, श्री जगन्नाथ प्रसाद एवं रतन जी आदि स्वयं सेवकों ने छपरे से ३५० कि०मी० दूर की कठिन यात्रा कर प्रायः ढाई लाख रुपयों के कम्बल एवं साड़ियों के वितरण में महत्त्वपूर्ण श्रमसाध्य सहयोग किया। श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द विषयक ५०० पुस्तकों का भी वितरण किया गया।

❑

भगवान् श्रीरामकृष्ण का सार्वजनीन मन्दिर

नम्र निवेदन

प्रिय, भक्तजन एवं सज्जनो !

नागपुर नगर में स्थित रामकृष्ण मठ स्वामी विवेकानन्द द्वारा स्थापित रामकृष्ण संघ का ही एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र है जो पिछले ७४ वर्षों से भगवान् श्रीरामकृष्ण देव के आदर्शवाक्य 'शिवज्ञान से जीवसेवा' को उद्देश्य मानकर जनता की अनेकविध सेवाओं में प्रयत्नशील रहा है।

मठ का वर्तमान मन्दिर जीर्ण-शीर्ण होने तथा भक्तों की बढ़ती संख्या से प्रार्थना-कक्ष छोटा पड़ने के कारण विवश होकर हमने पुराने भवन के स्थान पर ही संकल्पित बड़ा मन्दिर का निर्णय लिया है जिसके विवरण निम्नलिखित हैं–

मन्दिर की लम्बाई एवं चौड़ाई	११७'×४८'
मन्दिर की ऊँचाई	६७'
गर्भ-मन्दिर (पूजागृह)	१८'-६''×१८'-६''
उपासना कक्ष (५०० भक्तों के बैठने के लिये)	६७'×४०'
दोनों ओर के बरामदे	६७'×४'
मन्दिर-तलघर एवं सभा भवन	९१'-६''×५१

इस समस्त निर्माण कार्य पर लगभग तीन करोड़ रुपयों के व्यय के लिये यह मठ जन-साधारण से मिले दान पर ही निर्भर है। अतः आपसे हमारा आन्तरिक अनुरोध है कि मानवता की सर्वांगीण उन्नति हेतु प्रस्तावित इस योजना के लिए आप **उदारतापूर्वक दान** दें।

भगवान् श्रीरामकृष्ण देव का आप सभी पर आशीर्वाद रहे, इस प्रार्थना सहित–

कृपया ध्यान दें–

दान की राशि डी.डी./चेक द्वारा **रामकृष्ण मठ, नागपुर** के नाम पर भेजे। दान की राशि आयकर की धारा ८०-जी के अन्तर्गत आयकर से मुक्त होगी। विदेशी मुद्रा में दिया गया दान भी स्वीकार किया जाएगा।

प्रभु की सेवा में,

(स्वामी ब्रह्मस्थानन्द)

अध्यक्ष

रामकृष्ण मठ, धंतोली, नागपुर

रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर–४४० ०१२

फोन : २५२३४२२, २५३२६९०, फैक्स : २५३७०४२

ई.मेल : rkmath@nagpur.dot.net.in

डाक पंजीयित संख्या – सी.एच.पी. १४-८३
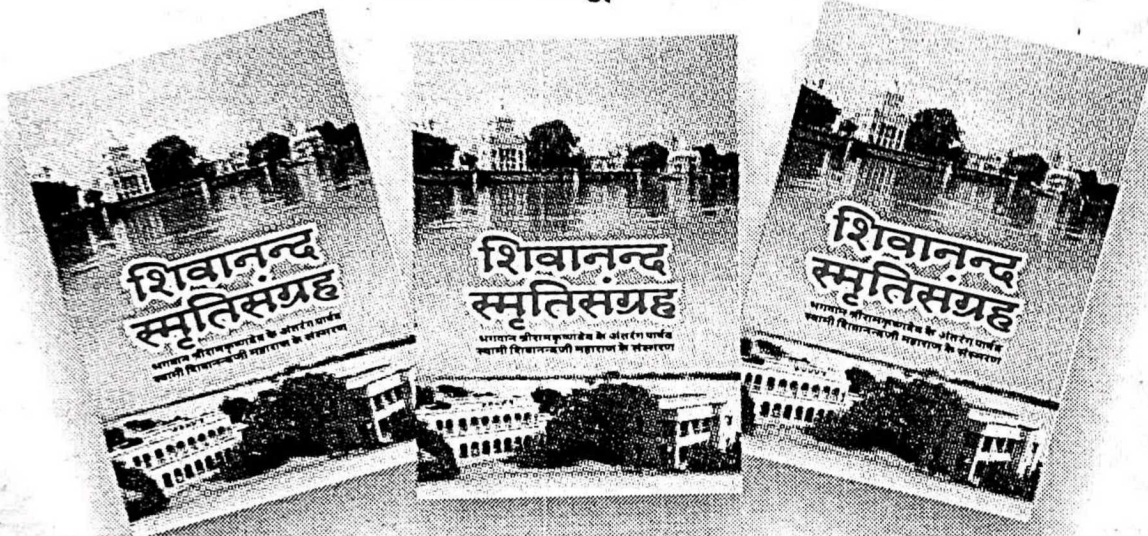
डॉ. केदारनाथ लाभ, रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार)
द्वारा प्रकाशित एवं सम्पादित तथा विवेकानन्द
ऑफसेट प्रिन्टर्स, छपरा – ८४१३०१ में मुद्रित।

मुद्रक : वृषाली ऑफसेट, नागपुर-१८